नाभादास कृत भक्तमाल

:

एक अध्ययन

प्रकाशनारायण दीक्षित

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : सन् १९६१ ईसवी

पाँच रुपया

मुद्रक
बिन्दाप्रसाद ठाकुर
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

कीरति भनति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

—गोस्वामी तुलसीदास

जड़ चेतन गुन दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार॥

—गोस्वामी तुलसीदास

भक्ति, भक्त, भगवंत, गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इनके पद वंदन किये, नाशैं विघ्न अनेक॥

—नाभादास

अनुक्रम

सप्तम परिच्छेद

अष्टम परिच्छेद

नवम परिच्छेद

दशम परिच्छेद

परिशिष्ट (क)

परिशिष्ट (ख)

परिशिष्ट (ग)

परिशिष्ट (घ)

प्राक्कथन

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में तुलसीदास तथा नाभादास ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनका प्रभाव भारतीय जनता पर युगों तक रहेगा। जब तक भगवान राम का उज्वल चरित्र भारतीय जनता को सुख-दुःख में प्रेरणा देता रहेगा, तब तक तुलसीदास की वाणी के माध्यम से 'मंगल करनि कलिमल हरनि' रघुनाथ की कथा के जिस रामचरितमानस का सर्वत्र प्रचार रहेगा और जब तक 'राम ते अधिक राम कर दासा' का उच्चादर्श समाज को पुनीत एवं कल्याणकारी पथ प्रदर्शित करता रहेगा, तब तक नाभादास अविस्मरणीय बने रहेंगे। तुलसीदास ने श्रीराम के महान् चरित्र को शिक्षित एवं अशिक्षित जनता के लिए समान रूप से सुलभ बनाया, तो नाभादास ने राम के चरित्र को हृदयंगम करने वाले भक्तों को श्रद्धालु जनता के लिए सुलभ बनाया। तुलसीदास एवं नाभादास ऐसे सौभाग्यशाली कवि हैं जिनकी रचनाओं ने अनेकानेक टीकाकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके नयी परम्पराओं को जन्म दिया।

नाभादास कृत 'भक्तमाल' का विशेष महत्व तीन दृष्टिकोणों से है :

१. धर्म-साधना और साधकों का इतिहास प्रस्तुत करने की दृष्टि से।
२. साहित्य के अनेक कवियों के चरित्र को सुरक्षित रखने की दृष्टि से।
३. जीवनी-साहित्य की नवीन परम्परा स्थापित करने की दृष्टि से।

उपर्युक्त दृष्टियों से नाभादास की अमर और कल्याणकारी रचना का पृथक्-पृथक् तीन क्षेत्रों में महत्त्व है। इस प्रकार 'भक्तमाल' साधना और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से महत्त्वपूर्ण रचना है। इस ग्रन्थ के माध्यम से भक्तों का जीवन जितना उदात्त और समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया गया है, उतना ही वह साहित्य को विकास की दिशा में अग्रसर करने के लिए यह सहायक है। 'भक्तमाल' की परम्परा में प्रायः २०० ग्रन्थों की रचना हुई। नयी मान्यता, नयी परम्परा और जीवन के लिए नये-नये मानदंडों को स्थापित करने वाले इस ग्रन्थ की ओर

हिन्दी के इतिहासकारों ने सम्यक रूप से ध्यान नहीं दिया। हिन्दी के इतिहासकारों ने नाभादास के समकालीन मर्यादावादी गोस्वामी तुलसीदास, भक्त-प्रवर महाकवि सूरदास, प्रेम एवं विरह की अमर-गायिका मीरां, आचार्य केशवदास, संत कवि मलूकदास तथा सुन्दरदास, नीतिकार बीरबल, गंग एवं रहीम् तथा अष्टछाप के अनेक कवियों की ओर ध्यान दिया है और उनके काव्य की विशेषताओं की विवेचना विस्तार के साथ की है। परन्तु भक्तों के चरित्र को प्रकाश और अमरत्व प्रदान करने वाले नाभादास की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। इतिहासकारों ने नाभादास के सम्बंध में जो कुछ लिखा है वह या तो अपर्याप्त है या अपूर्ण। प्रस्तुत रचना द्वारा इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत आलोचनात्मक अध्ययन दश परिच्छेदों में सम्पन्न हुआ है। प्रथम परिच्छेद 'अध्ययन के सूत्र' में नाभादास के सम्बंध में उपलब्ध सामग्री का परीक्षण और मूल्यांकन किया गया है। आचार्य शुक्ल जी, आचार्य मिश्रबन्धु, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० राम कुमार वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों ने नाभादास जी के सम्बध में जो कुछ सामग्री (साहित्य के इतिहासों में) दी है, उस पर यहाँ विचार किया गया है। इन विद्वानों द्वारा दिये गए संकेतों से लेखक को बड़ा लाभ हुआ है। इस परिच्छेद से लेखक के अध्ययन और परिश्रम का अनुमान किया जा सकता है।

द्वितीय परिच्छेद का शीर्षक है 'नाभादास का युग'। युग की परिस्थितियां व्यक्ति, लेखक और समाज को हर प्रकार से प्रभावित करती हैं। नाभादास अकबर के समकालीन थे। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने नाभादास और उनके मस्तिष्क को किस प्रकार प्रभावित किया यह प्रस्तुत परिच्छेद का प्रतिपाद्य है। प्रस्तुत परिच्छेद में परिस्थितियों का उल्लेख प्रकाशित इतिहासों तथा नाभादास के समकालीन कवियों की अप्रकाशित रचनाओं के आधार पर किया गया है। यह सर्वथा मौलिक प्रयास है।

तृतीय परिच्छेद है 'नाभादास की जीवनी और व्यक्तित्व'। नाभादास की जीवनी और व्यक्तित्व को वैज्ञानिक रूप से अंकित करने के लिए लेखक ने हर प्रकार की उपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का उपयोग किया है। आलोच्य कवि की जीवनी पर इससे अधिक सामग्री का उल्लेख कहीं पर नहीं हुआ है। प्रस्तुत अध्याय लेखक के विस्तृत अध्ययन और परिश्रम का द्योतक है।

चतुर्थ परिच्छेद में 'भक्तमाल के वर्ण्य-विषय' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया

है। भक्तमाल का वर्ण्य-विषय सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग, देवीचरित्र, मानवी चरित्र एवं इसी प्रकार के अन्य शीर्षकों में विभाजित कर लिया गया है। लेखक ने भक्तमाल के चरित्रों के विश्लेषण और विभाजन द्वारा इस अध्याय के वैज्ञानिक अध्ययन को रोचक बनाने का प्रयत्न किया है। यह परिच्छेद सर्वथा मौलिक प्रयास है।

पंचम परिच्छेद में 'इतिहास की कसौटी पर चरित्रों का मूल्यांकन' प्रस्तुत किया गया है। लेखक के परिश्रम और मौलिक प्रयास की दृष्टि से यह परिच्छेद विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। इतिहास की कसौटी पर भक्तमाल के कतिपय पात्रों पर ही विचार किया जा सका है। सच यह है कि यह विषय स्वतः एक स्वतंत्र अध्ययन और अनुसंधान का विषय है। षष्ठ-परिच्छेद में जीवनी-शिल्प-विधान की दृष्टि से भक्तमाल का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। यह परिच्छेद लेखक के परिश्रम और जीवनी-साहित्य के सम्बंध में विस्तृत अध्ययन का सूचक है।

सप्तम परिच्छेद नाभादासकृत 'भक्तमाल का काव्य-कला की दृष्टि से मूल्यांकन' प्रस्तुत करता है। इस परिच्छेद में 'भक्तमाल' का अध्ययन भाव-प्रकाशन, अभिव्यंजना-शक्ति, कल्पना का उत्कर्ष, रस-परिपाक, चरित्र-चित्रण तथा रचना-शैली शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। परिच्छेद के प्रारम्भ में नाभादास के काव्यादर्श का विवेचन भी किया गया है। 'भक्तमाल' की काव्यगत विशेषताओं के सम्बंध में यह प्रयास पूर्णतया मौलिक है।

अष्टम परिच्छेद में 'नाभादासकृत भक्तमाल की भाषा' का आलोचनात्मक अध्ययन है। नाभादास के समकालीन तुलसीदास और सूरदास क्रमशः अवधी और ब्रजभाषा के महाकवि थे। इन कवियों ने जिस भाषादर्श से प्रभावित हो कर अवधी और ब्रजभाषा को भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया उससे नाभादास का किंचित् भिन्न दृष्टिकोण था। प्रस्तुत परिच्छेद में नाभादास की भाषा पर लेखक ने अपना आलोचनात्मक मत सविस्तार प्रकट किया है। यह लेखक का सर्वथा प्रथम और मौलिक प्रयास है।

नवम परिच्छेद है 'नाभादास की प्रतीक योजना'। नाभादास प्रतीक योजना में बड़े कुशल थे। उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने प्रतीक योजना के पीछे नाभादास के मस्तिष्क और भावों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। प्रतीक योजना विषयक यह अध्याय पूर्णतया मौलिक है।

दशम परिच्छेद है 'भक्तमाल की परम्परा'। इस परिच्छेद में भक्तमाल की

परंपरा का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। इस परिच्छेद की सामग्री अनुसंधान एवं मौलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना लखनऊ विश्व-विद्यालय की एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा के प्रबन्ध के रूप में की गई है। हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर डा० दीन दयालु गुप्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्० की महती कृपा एवं स्नेह-पूर्ण निर्देशन में इस ग्रन्थ की रचना हुई है। लेखक इस अवसर पर उनके चरणों में श्रद्धावनत होकर कृतज्ञता-ज्ञापन करता हुआ आशीर्वाद का अभिलाषी है।

डा० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, डा० हीरालाल दीक्षित, एम० ए०, पी-एच० डी०, डा० सरला शुक्ल तथा डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० की सहायता एवं प्रोत्साहन के लिए इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर लेखक इनके मूल्य को कम नहीं करना चाहता।

इस ग्रन्थ के लिए अपेक्षित बहुत-सी सामग्री आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काशी विश्वविद्यालय, श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर, श्री रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग विश्व-विद्यालय, श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी आदि की कृपा से उपलब्ध हुई है। लेखक इन सभी को हृदय से धन्यवाद देता है।

समय-समय पर इस ग्रंथ में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहा है। आज से लग-भग दो वर्ष पूर्व इस ग्रंथ की रचना एम० ए० परीक्षा के प्रबन्ध रूप में हुई थी, किन्तु आज इसके कलेवर में कुछ वृद्धि हो गई है। कुछ समय पूर्व हिन्दी के एकाध विद्वानों ने नाभादास और नारायणदास को दो भिन्न व्यक्तित्व सिद्ध करने का प्रयास किया था। लेखक ने उसका भी यथास्थान समाधान प्रस्तुत किया है।

—प्रकाशनारायण दीक्षित

प्रथम परिच्छेद

अध्ययन के सूत्र

श्री नाभादास कृत 'भक्तमाल' हिन्दी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'भक्तमाल' हिन्दी साहित्य में 'रामचरितमानस' के पश्चात् अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। 'भक्तमाल' बड़ा ही लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। भक्त-मंडली में इस ग्रन्थ का सदैव से ही सम्मान किया गया है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि कई भक्तों द्वारा इसकी टीकाएँ हुईं हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि यह एक ऐसा स्तम्भ है जिस पर हिन्दी साहित्य के विशाल भवन का निर्माण हुआ है। इतिहास के निर्माण सूत्रों में यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनेक आत्म-ख्याति में अरुचि रखने वाले भक्त कवियों की जीवनियों को प्रकाश में लाने का श्रेय 'भक्तमाल' को ही है। भक्तों की जीवनी के अतिरिक्त नाभादास ने भक्तों का संक्षेप में जीवन-दर्शन भी देने का प्रयत्न किया है। 'नाभादास' पूरे पारखी थे, वे भक्त को भक्त और भक्त कवि को कवि लिखने में सजग हैं। वस्तुतः नाभादास हिन्दी भाषा साहित्य के पहले समालोचक माने जाने चाहिए।[1]

'भक्तमाल' का महत्त्व दो दृष्टिकोणों से आँका जा सकता है। सर्वप्रथम इसे हम जीवन-चरित्र परिचयात्मक ग्रन्थ कह सकते हैं। दूसरे यह एक धार्मिक ग्रन्थ है। 'भक्तमाल' के लिखने मे कवि नाभादास का उद्देश्य सम्भवतः यह था कि इसके द्वारा जनता में भक्तो के प्रति पूज्य भाव तथा आदर के भाव उत्पन्न किये जायँ। इस उद्देश्य की पूर्ति भी इससे अच्छी हुई और जनता की श्रद्धा और भक्ति भक्तों के प्रति अधिक हो गयी।[2] कवि ने 'भक्तमाल' में समस्त भक्तों

---

१. महावीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित निबन्ध।

२. डा० रसाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७

के प्रति अपने हृदय की श्रद्धा और भक्ति-श्रद्धांजलि रूप में अर्पित की है। "उसमें साम्प्रदायिक विभेद का परित्याग कर अनेक महात्माओं की जीवनी और कीर्ति की प्रशस्ति लिखी गयी है।"[1]

'भक्तमाल' की रचना उस समय हुई थी जब तुलसी जैसे महाकवि काव्य को केवल भगवान के गुणगान का माध्यम ही समझते थे। तुलसी ने 'मानस' मे इसका प्रतिपादन करते हुए कहा भी है कि सासारिक मनुष्यों का गुणगान करने से सरस्वती भी सिर धुन-धुन कर पछताने लगती है। इसके अनन्तर महाकवि तुलसीदास ने महाकवि अथवा सच्चे कवि के गुणों पर भी प्रकाश डालते हुए कहा है कि चतुर कवि वही है जिसका हृदय समुद्र के समान है, बुद्धि सीप के समान और जो सरस्वती को स्वाति के समान मानते है। जब सरस्वती अच्छे विचार रूपी जल की वर्षा करती है तभी कविता रूपी सुन्दर मुक्तामणि की उसके द्वारा उत्पत्ति होती है :

"कवि कोबिद अस हृदय बिचारी। गॉवहि हरिजस कलमल हारी॥
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जौं बरसइ बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकता मनि चारू॥"[2]

गोस्वामी तुलसीदास से लगभग १०० वर्ष पूर्व संतकाव्य-धारा के प्रवर्तक महात्मा कबीर दास ने भी इस बात का उपदेश किया था कि काव्य का उद्देश्य अथवा प्रयोजन भौतिक और विनाशशील तत्वों के गायन तक ही सीमित नहीं है। कबीर ने भी अनुभव द्वारा प्राप्त ब्रह्म विषयक ज्ञान के प्रसार और विस्तार का एक माध्यम विशेष काव्य को कहा है। कबीर ने ऐसा ही उपदेश करते हुए कहा है कि :

"जग भव का गावना का गावै।
अनुभव गावै सो अनुरागी है।"[3]

कबीर की परम्परा मे अवतरित होने वाले संत कवि दरिया साहब ने काव्य

---

१. डा० श्याम सुन्दर दास : हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१४
२. रामचरितमानस, मूल गुटका २३वाँ संस्करण, पृ० ४२
३. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २१६

का प्रयोजन आध्यात्मिक साधना माना है। दरिया साहब ने काव्य को राम नाम के भजन का एक माध्यम घोषित किया है :

> "सकल कवित का अर्थ है, सकल कवित की बात।
> दरिया सुमिरन राम का, कर लीजै दिन रात ॥[1]

जिस देश में काव्य रचना की ऐसी परम्पराएँ प्रचलित रही हों, वहाँ पर 'भक्तमाल' जैसे ग्रन्थ का लिखा जाना, वास्तव में एक असाधारण घटना का ही परिचायक है। कारण स्पष्ट है। बड़े-बड़े कवियों ने काव्य को केवल भगवान के गुण गान का ही एक माध्यम उद्घोषित किया था। कवि नाभादास ने 'भक्त-माल' में न तो भगवान का ही केवल वर्णन किया है और न सामान्य मानव जाति का ही। उन्होंने भक्तों के चरित्रों का वर्णन कर, 'भक्तमाल' में अपने हृदय की श्रद्धा और आस्था को प्रकट किया है।

'भक्तमाल' में कवि ने भक्तों के जीवन चरित्रों के उन पक्षों का उद्घाटन किया है जिनसे उन भक्तों का महत्त्व सामान्य जनता के मध्य कुछ और अधिक बढ़ जाता है। साधारण रूप से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भक्तों का व्यक्तित्व, सामान्य वर्ग से अधिक उच्च होता है। संसार में रहते हुए भी वे निर्लिप्त रहते हैं, देह होते हुए भी उन्हें विदेह कहा जा सकता है। भक्तों का जीवन पवित्रता और आदर्शों की एक ऐसी जलती हुई ज्वाला है जिसमें अनेक कलुषित तत्त्व भी जल कर भस्म हो जाते हैं। इन भक्तों के चरित्रों को लिपिबद्ध करके, नाभादास ने अज्ञान के अन्धकार में निमग्न जनता को एक ऐसा मार्ग दिखाया जिसमें आलोक के सिवाय और कुछ था ही नहीं। कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास जी ने 'रामते अधिक राम के दास' को अधिक महत्त्व दिया था।

जीवनी लेखन की प्रणाली नाभादास जी से ही हिन्दी में प्रारम्भ होती-सी जान पड़ती है। जीवनी की कोई क्रमबद्ध परम्परा 'भक्तमाल' के पूर्व नहीं मिलती। इस दृष्टिकोण से कवि का यह प्रयास प्रशंसनीय है।

'भक्तमाल' और नाभादास जी के सम्बंध में जो आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध है उसका विवरण निम्नलिखित प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. सरोज : शिवसिंह सेंगर

२. मिश्रबंधु विनोद : मिश्रबंधु

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २२८

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० रामचन्द्र शुक्ल

४. हिन्दी भाषा और साहित्य : डा० श्याम सुन्दर दास

५. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास : अयोध्या सिंह उपाध्याय

६. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त

७. वाङ्मय विमर्श : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

८. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा

९. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन : डा० रामकुमार वर्मा

१०. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० रामशंकर शुक्ल, 'रसाल'

११. कल्याण संत वाणी अंक

१२. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी

१३. रिलिजस सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज : एच० एच० विल्सन

१४. मिडिविएल मिस्टिसिज्म : के० एम० सेन

उपर्युक्त सामग्री का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से अनुशीलन कर लेना आवश्यक है। 'सरोज' हिन्दी का सर्वप्रथम इतिहास है। इसकी रचना जेष्ठ शुक्ल १२, संवत् १९३४ वि० में हुई थी। शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रन्थ 'सरोज' में नाभादास का परिचय बहुत संक्षेप मे दिया है। सेंगर जी द्वारा लिखित परिचय केवल पांच शब्दों मे ही समाप्त हो जाता है। इसके अनन्तर इतिहासकार ने 'भक्त-माल' से ६ पंक्तियाँ उद्धृत करके नाभादास के काव्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'सरोज' मे कवि ने नाभादास के विषय मे इस ओर इंगित किया है कि कवि नाभादास अग्रदास जी के शिष्य थे। जिस छप्पय को इतिहासकार ने 'सरोज' में रखा है, उससे इस तथ्य का स्पष्ट आभास हो जाता है कि नाभादास जी ने अनेक देवताओं और भक्तों की कीर्ति का गुणगान किया था। कवि ने भगवान के भक्तों का यश वर्णन भी बड़ी सतर्कता से किया है। 'सरोज' मे नाभादास के संबंध में लिखा है कि :

३६५ नाभादास कवि, अग्रदास जी के शिष्य (भक्तमाल) छप्पै

"संकर, सुक सनकादिक, कपिल नारद, हनुमाना।
विषकसेन, प्रहलाद, वलिदरु, भीषम जग जाना॥
अर्जुन, ध्रुव, अंवरीष, विभीषन, महिमा भारी।
अनुरागी, अक्रूर सदा ऊधव अधिकारी॥

भगवत्त भक्त अवसिष्ठ की, कीरति कहत सुजान हैं।
हरि प्रसाद रस स्वाद के भक्त इते परमान हैं ॥"[१]

इसके आधार पर न तो नाभादास का भली प्रकार परिचय ही मिल पाता है और न काव्य-कौशल का ठीक-ठीक अनुमान ही लगाया जा सकता है।

'सरोज' के पश्चात् नाभादास जी के सम्बंध में सविस्तार परिचय और विवरण देने का कार्य 'मिश्रबंधु विनोद' में सम्पन्न हुआ।[२] विद्वान लेखकों ने लगभग चार पृष्ठों में नाभादास और प्रियादास का परिचय दिया है। मिश्रबंधु पहले इतिहासकार हैं जिन्होंने नाभादास के उपेक्षित व्यक्तित्व के प्रति इतना ध्यान दिया है। मिश्रबंधु निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डालते हैं :

(क) नाभादास के गुरु का नाम
(ख) नाभादास का समय
(ग) भक्तमाल की रचना-तिथि
(घ) नाभादास की जाति
(च) नाभादास का निधन काल
(छ) नाभादास एक भक्त के रूप में
(ज) नाभादास एक कवि के रूप में
(झ) नाभादास के अन्य ग्रन्थों का परिचय
(ट) नाभादास का महत्त्व

उपलिखित इन विषयों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास के सम्बंध में मिश्रबंधु ने जो कुछ सामग्री दी है वह हिन्दी में सर्वथा मौलिक और नवीन है। इतने विस्तार के साथ नाभादास का आलोचनात्मक अध्ययन हिन्दी में सम्भवतः इससे पूर्व नहीं हुआ था। नाभादास के व्यक्तित्व और रचनाओं के सम्बंध में 'मिश्रबंधु विनोद' से हमें पर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि 'विनोद' के बाद में लिखे जाने वाले इतिहासों में इन्हीं बातों (नाभादास के गुरु का नाम, समय, भक्तमाल की रचना-तिथि, नाभादास की जाति, नाभादास के ग्रन्थ आदि) की पुनरावृत्ति हुई है।

'मिश्रबंधु विनोद' के अनन्तर शुक्ल जी लिखित 'हिन्दी साहित्य का

---

१. शिवसिंह सेंगर : सरोज, सातवाँ संस्करण, पृ० १७१
२. मिश्रबन्धु विनोद, चतुर्थ संस्करण, पृ० ३५७-६१

इतिहास' इस दृष्टि से अध्ययन करने योग्य है। नाभादास के सम्बंध में जिन जिन बातों का उल्लेख मिश्रबंधु ने 'मिश्रबंधु विनोद' में किया था, उन्हीं बातों का उल्लेख आचार्य शुक्ल जी ने बहुत ही संक्षेप में अपने इस ग्रन्थ में कर दिया है। इसके साथ ही साथ शुक्ल जी ने एक कथा का भी उल्लेख किया है जिससे नाभादास एवं तुलसीदास के मिलन का भी प्रमाण मिलता है।[1] परन्तु यदि भली-भाँति देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्ल जी मिश्रबंधु से आगे नहीं बढ़ पाये।

डा० श्यामसुन्दर दास ने नाभादास का परिचय दो अवतरणों मे अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में दिया है। पहले अवतरण मे रामभक्ति की परम्परा में नाभादास का स्थान निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। इसी अवतरण में प्रियादास की टीका और प्रियादास के समय का उल्लेख हुआ है। दूसरे अवतरण में नाभादास की जाति, समय, तुलसीदास से भेंट, गुरु और उनकी काव्य-भाषा का विवरण दिया गया है।[2]

डा० श्यामसुन्दर दास द्वारा उल्लिखित सामग्री का नवीनता और मौलिकता के दृष्टिकोण से कोई महत्त्व नहीं है। कारण कि इन सब बातों का बड़े विस्तार के साथ उल्लेख मिश्रबन्धु और आचार्य शुक्ल बहुत पूर्व ही कर चुके थे।

'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' ग्रन्थ में हरिऔध ने प्रायः दो पृष्ठों में नाभादास का परिचय दिया है। इस परिचय में जीवनी और व्यक्तित्व की ओर कम ध्यान दिया गया है। नाभादास की काव्य-भाषा और शब्दावली के सम्बंध में पर्याप्त विवेचन हुआ है। सम्भवतः नाभादास की भाषा के सम्बंध में इतने विस्तार के साथ पहली बार ही विचार किया गया है।[3]

'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' में डा० दीनदयालु गुप्त ने नाभादास और उनके भक्तमाल के सम्बंध मे बड़े विस्तार के साथ विचार किया है। यह विवेचन लगभग ग्यारह पृष्ठों में सम्पन्न हुआ है। परन्तु 'भक्तमाल' का अध्ययन यहाँ पर अष्टछाप के कवियों की दृष्टि से किया गया है। नाभादास का परिचय देते हुए 'भक्तमाल' की रचना का समय, विद्वान लेखक ने संवत् १६८० निर्धारित किया है। इसके अतिरिक्त आलोचक ने प्रायः आठ पृष्ठों मे 'भक्तमाल' की टीकाओं

---

१. आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७

२. डा० श्यामसुन्दर दास : हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१४

३. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३४-३६

-की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों की जीवनी की विवेचना प्रस्तुत की है।[१]

'वाङ्मय विमर्श' में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने नाभादास के युग, आविर्भाव काल, भक्तमाल के वर्ण्य-विषय, भक्तमाल की भाषा, नाभादास की काव्य-शक्ति और उनकी गुरु-परम्परा का उल्लेख सूत्ररूप में किया है। आचार्य मिश्र हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार और आलोचक हैं। 'वाङ्मय विमर्श' में नाभादास की जीवनी और कृतित्व पर प्रकाश डालना लेखक का अभीष्ट नहीं था। हिन्दी साहित्य के विकास और इतिहास का विवरण देते हुए, विद्वान आलोचक ने संक्षेप में नाभादास के सम्बंध में यहाँ पर सभी आवश्यक बातों का उल्लेख कर दिया है। वाङ्मय विमर्श की सामग्री के आधार पर नाभादास के महत्त्व का आभास पाठक को हर प्रकार से मिल जाता है और यही विद्वान् लेखक का प्रयोजन था।[२]

'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में डा० रामकुमार वर्मा ने नाभादास के सम्बंध में जो कुछ सामग्री दी है वह पर्याप्त नहीं है। इसमें लेखक ने केवल जाति, समय और अग्रदास के शिष्यत्व का उल्लेख किया है। यह सूचना हमें 'मिश्रवन्धु विनोद' से पूर्व ही उपलव्ध हो चुकी है। नाभादास के अध्ययन के सम्बंध में इस ग्रन्थ से हमारा मार्ग-निर्देशन नहीं हो पाता।[३] आलोचनात्मक इतिहास की परम्परा में डा० वर्मा का दूसरा ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन'[४] है। इस ग्रन्थ में उन्हीं वातों का पिष्टपेपण है।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में डा० रसाल ने नाभादास के समय, प्रियादास की टीका, तुलसीदास और नाभादास की भेंट, का उल्लेख किया है। अन्त में रसाल जी ने नाभादास के ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है। यह सामग्री नाभादास के अध्ययन के विकास में अधिक सहायक नहीं है। इस पिष्टपेपण से हमारी जिज्ञासा शान्त नहीं होती है।[५]

कल्याण के 'संतवाणी' अंक में नाभादास के सम्बंध में जो कुछ दिया गया है वह परम्परागत है। परन्तु दो बातें ऐसी हैं जिनका उल्लेख हमें हिन्दी में पहली वार मिला है। पहली वात यह है कि नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास

---

१. डा० दीनदयालु गुप्त: अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १०९-२८

२. वाङ्मय विमर्श, पृ० २७२-२७३

३. डा० रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६७७

४. डा० रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २७८

५. डा० रसाल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७-८८

ने किया था और दूसरी वात यह है कि नाभादास का जन्मस्थान तैलग-देश राम-भद्राचल के पास है।[१] यद्यपि यहाँ पर नाभादास का परिचय बहुत संक्षेप मे दिया गया है, तथापि नवीन सूचनाओ के कारण इसका अपना महत्त्व है।

'उत्तरी भारत की सत-परम्परा' के लेखक श्री परशुराम चतुर्वेदी ने नाभादास की रचना का उपयोग अपने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मे अनेक वार किया है। परन्तु स्थान-स्थान पर 'भक्तमाल' की प्रशसा करके आलोचक आगे वढ जाता है। सम्भवत इसलिए कि नाभादास निर्गण कवियो की गणना से परे है।

एच० एच० विल्सन महोदय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिलिजस सेक्ट्स ऑफ हिन्दूज' के प्रारम्भ मे लिखा है कि भक्तमाल की रचना अव से (सन् १८६२ ई०) प्राय २५० दर्ष पूर्व हुई थी ओर 'भक्तमाल' ऐसे कवियो के जीवन चरित्र और परिचय की अच्छी सूची है।[२] 'भक्तमाल' पर सवसे पहली टीका सवत् १७६९ मे हुई थी। यह टीका भक्तमाल के रचे जाने के १०० वर्ष वाद हुई थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि 'भक्तमाल' की रचना सवत् १६६९ मे हुई थी[३] (सन् १६११)। विद्वान लेखक ने यह टीक ही कहा है कि अव से (१८६२ ई०) २५० वर्ष पूर्व 'भक्तमाल' की रचना हुई थी। कारण यह है कि प्रियादास की टीका के आधार पर भी भक्तमाल का रचना काल (सन् १६११) रहा होगा। नाभादास का यह अध्ययन अपूर्ण लगता है।

'मिडीवियल मिस्टिसिज्म' मे क्षितिमोहन सेन महोदय ने नाभादास का परिचय देते हुए तीन वातो का उल्लेख किया है। उनमे से पहली वात यह है कि नाभादास का आविर्भाव १६वी शताब्दी मे हुआ। दूसरी वात यह है कि नाभादास अनाथ थे। अन्त मे नाभादास 'भक्तमाल' के रचयिता थे। इस विवरण से हमे कोई नवीन सूचना नही प्राप्त होती और न अध्ययन को वल मिलता है।[४]

इस प्रकार नाभादास के सम्वध मे शिवसिह सेगर, मिश्रवन्धु, डा० दीनदयालु गुप्त, हरिऔध जी तथा सम्पादक 'सत वाणी' अक 'कल्याण' ने जो सूचनाएँ दी हैं, वे सभी महत्त्वपूर्ण है। उनके द्वारा नाभादास के सम्वध मे हम कुछ रूपरेखा निर्धारित कर सकते है।

---

१. कल्याण 'संत वाणी' अंक, पृ० २७५
२. H. H. Wilson : Religious Sects of Hindus
३. मिश्रवन्धु : मिश्रवन्धु विनोद, पृ० ३७५
४. के० एम० सेन : मिडीवियल मिस्टिसिज्म, पृ० ६५

द्वितीय परिच्छेद

नाभादास का युग

मनुष्य सामाजिक प्राणी है।[1] अतः समाज मनुष्य के द्वारा तथा मनुष्य सामाजिक वातावरण और परिस्थितियों से क्षण-प्रतिक्षण प्रभावित हुआ करता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य सामाजिक वातावरण से प्रभावित होकर, समाज पर अपने कृत्यों द्वारा कुछ ऐसी अमिट छाप छोड़ देता है जो किसी विशेष महत्त्व का द्योतन करती है। जिस प्रकार साहित्य और समाज के सम्बंध में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं डाला जा सकता, उसी प्रकार साहित्यकार और समाज के सम्बंध पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता।

किसी स्थान के रहने वाले मनुष्यों पर उस देश, समाज एवं समय का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वातावरण और परिस्थितियों से मानव, जीवन-पर्यन्त जकड़ा रहता है। वातावरण के प्रभाव से अछूता रहना मनुष्य के लिए अत्यन्त कठिन है। मनुष्य जन्म से ही स्वतंत्र सत्ता लेकर उत्पन्न होता है, किन्तु प्रत्येक पग पर वह बंधनों से जकड़ा हुआ है।[2]

समय-समय पर महान् आत्माओं का उदय हुआ करता है और ऐसी महान् आत्माएँ परिस्थितियो की दिशा बदल कर, वातावरण को प्रभावित कर, समाज पर कुछ ऐसे अमिट चिन्ह छोड़ जाया करती है, जिन्हें इतिहास सँभाल कर भविष्य के लिए रख छोड़ता है। भारत के धार्मिक इतिहास में इस प्रकार की अनेक महान् आत्माओ का उदय हुआ और प्रकृति के नियमानुसार उन्हें कालकवलित होना पड़ा। भारत का धार्मिक इतिहास इस तथ्य का ज्वलंत

---

१. इस वाक्य का प्रतिपादक अरस्तू था—Man is a social animal.

२. वालटेयर: Man is born free but every where he is in chains.

प्रमाण है कि उसने असंख्य देवतुल्य आत्माओं को जन्म दिया। इन्हीं कुछ भक्त आत्माओं में से हमारा आलोच्य कवि नाभादास भी था। भक्त नाभादास के नवनीत सदृश्य हृदय में भक्ति की धारा बहाने का श्रेय उनके गुरु अग्रदास जी को है। नाभादास ने भगवान के स्वरूप भक्तों के चरित्रों का प्रणयन किया। नाभादास स्वयं एक बहुत बड़े भक्त थे और भक्तिरस-सुधा को जनता में प्रवाहित करना चाहते थे। नाभादास के 'भक्तमाल' में वर्णित चरित्रों से ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं हो पाते, केवल भक्तों का परिचय मात्र ही मिल पाता है। इसका प्रमुख कारण यह जान पड़ता है कि कवि ने भक्तों के चरित्रों का वर्णन जनहिताय तथा स्वांतःसुखाय के दृष्टिकोण से किया था।

कवि के युग की परिस्थितियों की जानकारी के दो प्रमुख माध्यम, अन्तः-साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य हैं, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों के विषय में अन्तःसाक्ष्य मूक ही हैं। नाभादास के समय के विषय में अधिक प्रामाणिक सामग्री अभी तक उपलब्ध नहीं हो पायी। नाभादास के समय और समकालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाले सूत्रों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं उनके समकालीन कुछ कवि जिनमें विशेप रूप से उल्लेखनीय हैं गोस्वामी तुलसीदास और सथुरादास। सथुरादास प्रसिद्ध संत कवि मलूकदास के प्रमुख शिष्य, नाभादास के समकालीन और 'मलूक परिचयी' के लेखक थे। इनकी 'मलूक परिचयी' में अपने समय की परिस्थितियों की ओर किंचित् प्रकाश डाला गया है। इसके अनन्तर नाभादास के समय पर प्रकाश डालने वाले कुछ इतिहासकार भी हैं। उनमें विशेप उल्लेखनीय हैं एच० एच० विल्सन, डा० ग्रियर्सन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दर दास, डा० रसाल, डा० वर्मा, डा० दीनदयालु गुप्त आदि।

सामान्य रूप से नाभादास का समय संवत् १६४२ से १७०० तक माना जाता है। यदि यह मान लिया जाय कि सम्पूर्ण 'भक्तमाल' का प्रणयन नाभादास द्वारा ही हुआ तो उनका समय सं० १७१५ के बाद तक चलता है।[१] नाभादास जी ने लगभग ६० वर्ष का पवित्र तथा निष्कलंक जीवन व्यतीत किया था। नाभादास का आविर्भाव उस समय हुआ जब भारत पर मुग़ल-सम्राट अकबर का राज्यकाल चल रहा था और अकबर के रूप में मुगल साम्राज्य का दीपक हिन्दुओं के स्निग्ध तेल से जगमगा रहा था। शाहजहाँ के राज्यकाल

---

१. महावीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, सम्मेलन पत्रिका, भाग ३५, संख्या ७ ९, पृ० १२९

में उनका महाप्रस्थान हुआ। उन्होंने अपने जीवन में तीन श्रेष्ठ मुगल बादशाहों का राज्यकाल देखा था अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ। निश्चय ही यह समय भारतीय संस्कृति, चित्रकारी, वास्तुकला और स्थापत्यकला के विकास की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था।

राजनीतिक स्थिति

नाभादास का प्रादुर्भावकाल १५वीं सदी का अंत और १६वीं सदी का प्रारम्भ था। भारतीय इतिहास के अनुसार नाभादास जी के समय लोदीवंश का शासनकाल समाप्त हो रहा था और भारतीय राजनीति के रंगमंच पर मुगल-शासक पदार्पण कर रहे थे। इतिहास के अनुसार सन् १५२६ ई०[1] में बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त किया और सन् १५२६ से लेकर १५३० तक दिल्ली का राज-शासन किया। उसके बाद हुमायूँ का, और सन् १५५६-१६०५ अकबर का राज्य काल रहा। इन पठानों और मुगलों के शासनकाल की अशांतिपूर्ण स्थिति और राजनीति के बनते-बिगड़ते रूप को नाभादास ने अपनी आँखों देखा और श्रुत अनुभव प्राप्त किया। नाभादास के समय अनेकानेक राजनीतिक और राजकीय परिवर्तन हुए थे। राज्यसत्ता को प्राप्त करने के लिए और पारस्परिक संघर्ष में रक्तपात कर देना, उस युग की विशेषता थी। उस समय कुछ भी स्थायी न था।[2] अकबर के पूर्ववर्ती बादशाहों के अव्यवस्थित, अनुशासन रहित, अनियमित अहंमन्यता से संचारित और अस्त-व्यस्त राज्यशासन के फलस्वरूप भारतीय जनता अत्यधिक कष्ट में थी और अधिकार-लिप्सा, सत्ता-प्रेमी राजाओं की वासनाओं की होली में झुलसी जा रही थी। रामराज्य की सुन्दर कल्पना करने वाले तुलसीदास को इन शासकों की क्रूरता, हिंसा भावना और अनियमित शासन बहुत खटकता था। उनकी निम्नलिखित

---

१. स्मिथ, अकबर दि ग्रेट मुगल, पृ० ११

२. Moreland: "On the other hand, a very small fault, or a trifling mistake, may bring a man to the depths of misery or to the scaffold and consequently everything is uncertain, wealth, position, love, friendship, confidence, everything hangs by thread. Nothing is permanent: Jahangir's India, p. 55.

पंक्तियों से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है :

"गोंड, गँवार नृपाल कलि यवन महा महिपाल ।
साम, न दाम, न भेद अव, केवल दंड कराल ॥

सथुरादास ने तुलसीदास की भाँति इन शासकों की वर्वरता का उल्लेख नहीं किया, परन्तु उन्होंने परिचयी में अकबर की नीति[१] और देश की दशा का संक्षेप में उल्लेख किया है । सथुरादास का कथन है :

"तीस वरस तक अकवर रहा ।
तिन साधुन सो कछु न कहा ।"[२]

इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं । सबसे पहली बात यह है कि तीस वर्ष के राज्यकाल में अकवर ने हिन्दू जनता के धार्मिक जीवन में किंचित् भी हस्तक्षेप नहीं किया तथा इस नीति के परिणामस्वरूप देश में शांति और धार्मिक स्वातंत्र्य रहा । सथुरादास के इस कथन का समर्थन इतिहासकार भी करते हैं । अकवर अपनी धार्मिक नीति में अपनी हिन्दू रानियों से अधिक प्रभावित था । उसके अन्तःपुर में हिन्दू रानियाँ मूर्तिपूजा, व्रत तथा दान आदि स्वतंत्रतापूर्वक करती थीं ।[३] इसका जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा । उसके उपासना-गृह में प्रत्येक धर्म पर स्वतंत्रतापूर्वक मत प्रकट किये जाते थे ।[४] अपने पूर्वजों द्वारा जजिया[५], तीर्थयात्रा कर[६] तथा देवालयों के निर्माण के विरुद्ध लगाये हुए प्रतिवंधों को अकवर ने हटा दिया था ।[७] अकवर की सारग्राहिता तथा उदारता का एक और भी उल्लेखनीय उदाहरण है । अकवर ने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों, अथर्ववेद, महाभारत, रामायण आदि का फ़ारसी में अनुवाद भी कराया था ।[८] अकवर

---

१. सथुरादास सुन्दरदास के समकालीन थे । कई ग्रन्थों की रचना की जो अभी अप्रकाशित हैं ।

२. परिचयी, पृ० १६

३. अकवरनामा, भाग २, पृ० १५९

४. श्रीराम शर्मा : दी रिलीजस पालिसी ऑफ मुगल एम्परर्स, पृ० १९

५. अकवरनामा, पृ० २०३-२०४

६. श्रीराम शर्मा : दी रिलीजस पालिसी ऑफ मुगल एम्परर्स, पृ० २३

७. Du Jarric, p. 75

८. दि रिलीजस पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, पृ० २५

ने अपने राज्य में शुद्धि की आज्ञा दे दी थी ।[१] अकवर ने सन् १५६२ ई० में युद्ध बंदियों को मुसलमान बनाने के पूर्व प्रचलित प्रथा को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया था ।[२] गो बध की भी उसने मनाही कर दी थी ।[३] उसने हिन्दुओं को ऊँचे-ऊँचे पद दिये[४] और हिन्दुओं को अपने धार्मिक पर्वो और त्योहारों के स्वतंत्रतापूर्वक मनाने की आज्ञा दी ।[५] अकवर हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दी भाषा का प्रेमी था और साथ ही साथ सम्मान भी करता था । वीरवल, गंग आदि जैसे हिन्दी के नीतिकार कवि उसके दरवार में उच्च नौकरियों में नियुक्त थे । अकवर ने सर्वप्रथम हिन्दी-फ़ारसी कोप 'पारसीक प्रकाश' की रचना करवायी थी ।[६]

अकवर की मृत्यु के वाद उसका पुत्र जहाँगीर राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुआ । इसके शासन के समय तक भारतीय जनता के हृदय पर अकवर की उदारता के चिह्न शेप रह गए थे । सथुरादास ने 'परिचयी' में जहाँगीर की धार्मिक नीति के विषय में इस प्रकार उल्लेख किया है :

"तिनके पीछे भा जहँगीरा ।
करता अदल हरै सव पीरा ॥[७]

आज के इतिहासकार भी सथुरादास के कथन से सहमत हैं । जहाँगीर मुसलमानों के साथ पक्षपात का व्यवहार करता था ।[८] वह हिन्दुत्व की अपेक्षा इस्लाम में अधिक रुचि रखता था । धर्म के ग्रहण और परित्याग के विषय में वह उदार न था ।[९] जो लोग इस्लाम को ग्रहण कर लेते थे उन्हें राज्यकोप से आर्थिक

---

१. वदायूनी : मुन्तखिव उल तवारीख, भाग २, पृ० ३९१
२. अकवरनामा, भाग २, पृ० १५९
३. मुन्तखिव-उल तवारीख, भाग २, पृ० २६१, ३०३
४. दि रिलीजस पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, पृ० २६-२७
५. मुन्तखिव उल तवारीख, पृ० ३०६
६. देशदूत, ४ फरवरी, १९४४
७. परिचयी, पृ० १६
८. He was characterized as being less favourably inclined to Hindus Religious Policy of Moughal Emperors, p. 70
९. Ibid

सहायता भी दी जाती थी।[१] इसके अतिरिक्त जहाँगीर अन्य विषयों पर उदार ही बना रहा।[२] युद्ध के अवसरो पर उसने कई बार हिन्दुओ के मदिरो को नष्ट भी करवाया।[३] वह हिन्दू यात्रियो के प्रति उदारता का वर्ताव करता था।[४] उसके शासनकाल मे हिन्दू अपने पर्व और त्योहारो को पूर्ववत ही मनाते थे।[५] जहाँगीर की नीति अकबर की अपेक्षा सकुचित थी।[६]

जहाँगीर के पश्चात् उसका पुत्र शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा। मथुरादास ने 'परिचयी' मे शाहजहाँ के विषय मे भी उल्लेख किया है :

"शाहजहाँ तिनके सुत राजा।
तिन फिर बहुत गरीब नेवाजा॥"[७]

शाहजहाँ गरीबो पर दया दृष्टि रखता था। इन पक्तियो मे 'फिर' शब्द इस तथ्य का द्योतन करता है कि जहाँगीर की अपेक्षा शाहजहाँ अधिक उदार न था, किन्तु फिर भी वह गरीबो पर दया करता था।

अकबर धार्मिक मामलो मे उदार था। जहाँगीर इन विषयो की ओर से उदासीन तथा विमुख रहा करता था किन्तु शाहजहाँ एक कट्टर मुसलमान के रूप मे हमारे सम्मुख आता है। यद्यपि शाहजहा एक राजपूत नारी का पुत्र था, किन्तु उसमे मातृ-पक्ष के स्वाभाविक गुणो का लेशमात्र भी प्रभाव न दृष्टिगत होता था।[८] सन् १६३५ ई० मे शाहजहाँ ने अपने को इस्लाम के विरुद्ध चलने वालों

१ The memories of the Asiatic Society of Bengal, Part V, p. 154.

२ V. A. Smith . Oxford History of India, p. 397

३. Jahangir R. & S B. pp 154–155, 114–15.

४. The Religious Policy of Moughal Emperors, p.74

५. Ibid, p.82, 83

६. Ibid, p. 90

७. परिचयी, पृ० १६

८. If Akbar was liberal in his religious views and Jahangir indifferent to mere question of theology, Shahjahan was an orthodox Muslim. Although born to a Rajput mother to a father whose mother was also a

का विनाशकारी घोषित किया।[1] उसने राज्य के ऊँचे-ऊँचे पद मुसलमानों को दिये और हिन्दू तीर्थ यात्रियों पर कर लगा दिया।[2] सन् १६३२ ई० में उसने मंदिरों का बनवाना अवैधानिक घोषित कर दिया।[3] मुसलमानों के अत्याचार धीरे-धीरे हिन्दुओं पर बढ़ने लगे। शाहजहाँ ने जुझारसिंह तथा उसके परिवार वालों को मुसलमान बनवा लिया[4] और हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार के संकट उत्पन्न कर दियें।[5]

- शाहजहाँ अपने पूर्वजों की अपेक्षा इस्लाम धर्म में अधिक विश्वास करता था तथा उसका कट्टर पक्षपाती भी था। परन्तु उसके उत्पीड़न का व्यापक प्रभाव न पड़ा। इसी कारण मथुरादास ने उसकी नीति का विस्तारपूर्वक विवरण न देकर संक्षेप में 'बहुत गरीब नेवाजा' ही कह दिया। यह उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों का विवरण है।

सामाजिक परिस्थितियाँ

नाभादास के समय सामाजिक संगठन जैसा कुछ था उससे व्यावहारिक रीति भिन्न थी। समाज, वर्णव्यवस्था, ऊँच-नीच का भेद-भाव, और इसी प्रकार की विषमताओं से युक्त था। आश्रमव्यवस्था नहीं थी लेकिन समाज में योगियों, साधु-सन्यासियों के प्रति सम्मान का भाव था। पारिवारिक जीवन में देखावे की मर्यादा बंधन के रूप में प्रचलित थी परन्तु उसका आंतरिक स्फुरण विलीन हो चुका था। समाज में स्त्री अपनी स्वच्छंदता और अधिकार को खोकर बंधन और भय से पराभूत थी। बहुविवाह प्रथा राजदरबारों, मंसबदारों और मध्य-वर्ग की शोभा समझी जाती थी। उदात्त सामाजिक और देश-उन्नति की भाव-

---

Rajput princess. Shahjahan does not seem to have much influenced by these factors. The Religious Policy of Moughal Emperors, p. 94

१. The Religious Policy of Moughal Emperors, p. 96–97

२. The Religious Policy of Moughal Emperors, p.92

३. Dr. Smith : Oxford History of India, p. 421

४. Dr. Banarsi Prasad : History of Shahjahan, pp. 89-90.

५. Dr. Banarasi Pd : History of Shahjahan, p. 89

नाओ के स्थान पर विलासिता, कामुकता, ईर्षा-द्वेप और वैमनस्य का वोल वाला था। सरकारी कर्मचारी 'कनक' और 'कामिनी' मे रँगे हुए थे।[1]

समाज मे मुसलमानो का बोलबाला था। उन्ही की सेवा करने वाले हिन्दुओं और वादशाह के कृपापात्रो के अतिरिक्त अधिकार जनित जनता का जीवन निर्धनता और अभावो से ग्रस्त था, हिन्दू जनता महत्त्वाकाक्षा हीन और जीवन से उदासीन थी। अकवर का शासनकाल कुछ अशो मे समाज के लिए सुखमय था। लेकिन दरिद्रता, आचरण-हीनता और आत्म-विश्वास का अभाव उस समय की जनता मे भी कम नही था। अकवर के शासन-काल मे अनेक दुर्भिक्ष पडे जिनमे सन् १५५६ और १५७३ के दुरभिक्ष बडे बडे भीषण और व्यापक थे। वदायूनी[2] और 'तुजुक-ए-जहाँगीर'[3] से इनकी भीषणता का अनुमान लगाया जा सकता है।

✓गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय की इस दुर्भिक्षावस्था, सामाजिक व्यवस्था और चतुर्दिक व्याप्त विपत्तियो का उल्लेख 'कवितावली' मे कई स्थलो पर किया है। इन छदो मे देश की यथार्थ स्थिति साकार हो उठी है और समाज का हीन स्वरूप अपने-आप हमारे मस्तिष्क को आतकित करने लगता है। मजदूर, कृषको का समूह, वनिये, भिक्षुक, नौकर, चचल नट, चोर, वाजीगर, आदि सभी पेट भरने के लिए ही पढते है और पेट भरने तक ही अपने को सीमित रखते है। कहने का अभिप्राय यह है कि पेट के लिए लोग अनेक ऊँच और नीच कर्म मे प्रवृत्त रहा करते है। यहाँ तक कि पेट-पूजा के दृष्टिकोण को ही सम्मुख रख कर वेटा और वेटी तक को वेच डालते है। पेट की ज्वाला वड़वाग्नि से भी भयकर हुआ करती है।

---

१. "The Governors are usually bribed by the thieves to remain inactive for avarice dominates manly honour, and instead of maintaining troops, they fell and aborn their mahals with beautiful women and seem to have the pleasure house of the whole world within their walls"—Moreland's Translation of Jahangir's India.

२. तारीख रेंकिग का अनुवाद, पृ० ५४९-५१

३. तुजुक-ए-जहांगीरी, पृ० ३३०-४०

"किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी ।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन बन, अहन अखेटकी ।
ऊँचे, नीचे करम, धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी ।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की" ॥[1]

कहने का अभिप्राय यह है कि उस युग की साधारण जनता में केवल एक दृष्टिकोण को रखकर ही समस्त कार्य सम्पन्न किये जाते थे और वह था पेट का प्रश्न ।

उक्त समय में सामाजिक ढाँचे में उच्छृंखलता का साम्राज्य अपना विस्तार पा रहा था । प्राचीन आदर्श और परम्पराएँ धीरे-धीरे विलीन होती जा रही थीं । सामान्य वर्ग में लोगों की स्थिति अधिक संतोषजनक न थी । लोगों के पास धन का अभाव था । जीविका-विहीन दुःखी थे । दरिद्रता का तांडवनृत्य चल रहा था । संक्षेप में समाज अनेक अभिशापों से ग्रस्त था—

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी" ।
वेदहू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी ।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु ।
दुरित-दहन देखि 'तुलसी' हहा करी ॥"[2]

कुछ अन्य पंक्तियों मे तुलसी ने कलिकाल का बडा ही सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है। उसे एक निरंकुश राजा का स्वरूप कवि ने दिया है जिसके शासन का ध्येय केवल विनाश ही है, सृजन नहीं । ✓

सामाजिक संगठन के आधार पर जनता के कुछ वर्ग विशेष हुआ करते हैं। वर्ग-विहीन समाज कभी सुचारु रूप मे अपने गंतव्य की ओर नही पहुँच सकता

१. तुलसीदास, कवितावली : पृ० १७३-७४
२. तुलसीदास : कवितावली, पृ० १७४

तृतीय परिच्छेद

नाभादास का जीवन-चरित्र

नाभादास हिन्दी के सर्वप्रथम जीवनी-लेखक कहे जा सकते है। इस बात का नाभादास को भारी श्रेय है कि उन्होंने लगभग दो सौ भक्तों के जीवन-चरित्रों को लिपिवद्ध करके विस्मृति के गर्भ मे विनष्ट होने से बचा लिया। धार्मिक साधना और साहित्य-साधना के क्षेत्र मे नाभादास का व्यक्तित्व, इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि उनके टीकाकारों और उनकी परम्परा मे अवतरित होने वाले अन्य कवियों ने उनकी जीवनी को लिपिवद्ध करने का प्रयत्न नही किया। जिस व्यक्ति ने अपनी साधना और लगन से इतने भक्तों को प्रकाश दिया, वह स्वतः भारतीय जनता की उदारता का पात्र न वन सका। फलतः उसकी जीवनी रहस्य वन कर रह गई।

नाभादास की जीवनी पर प्रकाश डालने वाले व्यक्तियों में कुछ उनके समकालीन है और कुछ वर्तमान इतिहासकार। उनके समकालीन लेखकों में निम्नलिखित संत कवियो के नाम उल्लेखनीय है :

१. सत कवि वोधेदास[1]
२. सत कवि जनगोपाल[2]
३. सत कवि रामरूप[3]
४. संत कवि खेमदास[4]
५. संत कवि रघुनाथदास[5]

---

१. जगजीवन साहव की परिचयी (अप्रकाशित)
२. दादू जन्म लीला परिचयी
३. गुरु भक्त प्रकाश (अप्रकाशित)
४. गोपीचन्द चरित परिचयी (अप्रकाशित)
५. स्वामी हरिदास की परिचयी (अप्रकाशित)

६. संतकवि रूप दास[1]
७. संतकवि अनन्तदास[2]
८. संतकवि सयुरादास[3]
९. प्रियादास[4]

प्रियादास का आविर्भाव नाभादास से लगभग १०० वर्ष बाद हुआ था। वर्तमान इतिहासकारों में एच० एच० विल्सन, क्षितिमोहन सेन, शिवसिंह सेंगर, मिश्रबंधु, रामचन्द्र शुक्ल, राधाकृष्ण दास, हरिऔध, डा० रामकुमार वर्मा, डा० रसाल, परशुराम चतुर्वेदी तथा सम्पादक संतवाणी अंक कल्याण हैं। उपर्युक्त प्राचीन लेखकों में से बोधेदास, जनगोपाल, रामरूप, खेमदास, रघुनाथदास, रूपदास, अनन्तदास और सयुरादास ने नाभादास का परिचय विस्तार के साथ नहीं दिया है। इन्होंने नाभादास के गुरु, माता-पिता, जन्मस्थान, सन्-संवत् आदि का भी उल्लेख नहीं किया है। इन कवियों ने भक्तों की परम्परा में नाभादास का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया है। इनकी दृष्टि में नाभादास का भक्त रूप उनके लौकिक चरित्र की अपेक्षा अधिक महत्त्व का था। इस प्रकार इनके द्वारा प्रस्तुत की हुई जीवन सामग्री से हमें यही ज्ञात होता है कि नाभादास अपने समय के परम भक्त और साधक थे। ये सत्संग-प्रेमी थे और साधु-समाज में इनका मान था।

'भक्तमाल' की अनेक टीकाएँ हुईं। इसकी सबसे प्राचीन टीका प्रियादास जी द्वारा लिखित है। इसकी रचना संवत् १७६९ में हुई थी। प्रियादास जी ने इस टीका की रचना 'भक्तमाल' की रचना के प्रायः १०० वर्ष बाद की थी। आश्चर्य का विषय है कि इन टीकाकारों ने भी नाभादास के सम्बंध में कुछ भी नहीं लिखा और जो लिखा भी है, वह बहुत ही अपर्याप्त है। 'भक्तमाल' की टीका में प्रियादास ने नाभादास के विषय में कहा है कि—

(७) श्री नाभाजू का वर्णन—

---

१. स्वामी सेवादास की परिचयी (अप्रकाशित)

२. त्रिलोचन, नामदेव, धना, रंका, बंका, रैदास एवं पीपा साहब की पृथक्-पृथक् परिचयी (अप्रकाशित)

३. मलूकदास की परिचयी

४. भक्तमाल के प्रथम टीकाकार

"जाको जो स्वरूप सों अनूप लै दिखाय दियो
किये यों कवित्त पट मिहीं मध्य लाल है।
गुणा पै अपार साधु कहै आँक चारिही में,
अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है।
सुनि संत सभा झूमि रही अलि श्रेणी मानौ,
घूमि रही, कहैं यह कहा धौं रसाल है।
सुने हे अगर अब जानै मैं अगर सही,
चोवा भये नाभा, सों सुगन्ध भक्तमाल है॥"[1]

तिलक

जिस संत का जैसा स्वरूप है, श्री नाभा जी स्वामी ने उनको अपने अनूठे काव्य में वैसा ही अनूप दिखा दिया है और कविताई ऐसी की है कि जिसका अर्थ ऐसा झलकता है कि जैसे बहुत झीने वस्त्र के बाहर से उसके भीतर का लालमणि (रत्न) झलकता है। संतों के अपार गुणों को श्री नाभा जी ने थोड़े ही अक्षरों में यों कहा है कि उनमें अर्थ अनोखे विस्तृत भरे है, जैसे बड़े-बड़े कविवरों मे चमत्कृत रीति होती ही है। संतों की सभाएँ इस 'भक्तमाल' काव्य को सुन के भ्रमर-वृन्दों की भाँति मँडराती तथा झूमती रहती है ओर यह कहती है कि, "यह कैसा आश्चर्य रसमय रसाल है"। मैंने 'अगर' जी का नाम सुना तो था परन्तु अब ठीक जान भी लिया कि आप वस्तुतः 'अगर' है, जिनसे 'नाभा'[2] रूप 'चोआ' हुए कि जिन नाभा 'नाफा'[3] का भक्तमाल ऐसा सुगंध फैल रहा है॥"

उपर्युक्त विवरण से नाभादास के विषय मे दो महत्त्वपूर्ण बातों की जानकारी होती है। पहली यह है कि नाभादास जी कवियो, भक्तों के स्वरूप-वर्णन में बड़े सचेत थे। भक्तो के स्वरूपों का नाभादास ने 'भक्तमाल' मे ज्यों का त्यों विवरण दे दिया है, अपनी ओर से कुछ घटा बढ़ी नही की। दूसरी बात यह है कि नाभादास कवि थे।

नाभादास का समय

नाभादास जी का अस्तित्वकाल बड़े विवाद का विषय है। इसका प्रमुख

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल टीका, (सम्पादित रूपकला द्वारा)
२. नाभा जी 'नभोभूज' का अपभ्रंश है
३. नाफा कस्तूरी वाला

कारण यह है कि कोई भी ऐसा अन्तस्साक्ष्य नहीं मिलता जिसके आधार पर नाभादास के अस्तित्वकाल के विषय में कुछ कहा जा सके। कुछ किंवदंतियों, और बहिस्साक्ष्य के आधार पर नाभादास का समय विद्वानों ने निश्चित करने का प्रयास किया है। वर्तमान युग के हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों तथा पाश्चात्य विद्वानों ने नाभादास के समय के विषय में अपने ग्रन्थों में विभिन्न मतों का उल्लेख किया है। वे प्रमुख विद्वान् निम्नलिखित हैं :

मिश्रबंधु[१], डा० श्यामसुन्दरदास[२], राधाकृष्ण दास[३], रामचन्द्र[४], डा० रसाल[५], डा० दीनदयालु गुप्त[६], हरिऔध जी,[७], आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[८], सम्पादक संतवाणी अंक कल्याण[९], क्षिति मोहन सेन[१०], एच० एच० विल्सन[११]।

उपर्युक्त विद्वानों में मिश्रबन्धु ने नाभादास की मृत्यु तिथि का ही अनुमान किया है। डा० श्याम सुन्दरदास ने संवत् १६४२-१६८० तक का समय नाभादास जी का माना है। राधाकृष्ण दास[१२] ने नाभादास का स्थितिकाल १७६९ सं० माना है। रामचन्द्र शुक्ल ने नाभादास और तुलसी की मिलन कथा तथा समय का उल्लेख किया है। डा० रसाल ने भी इन्हीं दो रहस्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। डा० दीन दयालु गुप्त ने नाभादास को अष्टछाप के कवियों

---

१. मिश्रबंधु-विनोद

२. हिन्दी भाषा और साहित्य

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७

४. सम्पादक राधाकृष्ण दास ध्रुवदास-कृत भक्त नामावली, भूमिका

५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७-८८

६. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय

७. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० ३३४

८. वाङमय विमर्श, पृ० २७२-७३

९. संतवाणी अंक, कल्याण, पृ० ३७५

१०. मिडीवियल मिस्टिसिज्म, पृ० ६५

११. H. H. Wilson : Essays and Lectures chiefly on the Religion of Hindus.

१२. सम्पादक राधाकृष्ण दास : ध्रुवदास-कृत भक्तनामावली। पृ० ९०-९१

का समकालीन माना है। हरिऔध जी १७वीं शताब्दी समय निश्चित करते हैं। संतवाणी अंक, कल्याण के सम्पादक ने वि० सं० १६५७ के लगभग नाभादास का समय माना है। क्षितिमोहन सेन १६वीं शताब्दी को नाभादास जी का समय बतलाते हैं। एच० एच० विल्सन नाभादास को मलूकदास का समकालीन उद्घोषित करते हैं। अब इन विद्वानों के मतों का परीक्षण कर लेना उपयुक्त होगा।

'मिश्रबंधु-विनोद' में लेखक ने नाभादास के जन्म अथवा समय का कोई विवरण नहीं दिया है, केवल इतना ही संकेत किया है कि नाभादास का शरीरांत संवत् १७०० के लगभग हुआ होगा। नाभादास के शरीरांत का यह संवत् लेखक ने राधाकृष्ण दास के द्वारा दिये गए संवतों के आधार पर ही निश्चित किया है। यह संवत् १७०० केवल अनुमानित ही है, इसे प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए मिश्रबन्धुओं के पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। इसके अतिरिक्त लेखक ने यह भी बताया है कि नाभादास और तुलसीदास का मिलन भी हुआ था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास तुलसी के समकालीन थे।[1]

डा० श्याम सुन्दरदास नाभादास का समय सं० १६४२-१६८० तक मानते हैं।[2] किन्तु इसके साथ ही साथ डा० दास ने यह भी बताया है कि नाभादास के १०० वर्ष उपरात प्रियादास जी हुए थे जिन्होंने 'भक्तमाल' पर सर्वप्रथम टीका की थी। यदि नाभादास का शरीरांत संवत् १६८० मानते हैं तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि संवत् १७८० के लगभग प्रियादास जी ने 'भक्तमाल' पर अपनी टीका रची। किन्तु अधिकाश विद्वानों का कहना है कि 'भक्तमाल' की टीका प्रियादास जी द्वारा सवत् १७६९ में लिखी गयी थी।[3] नाभादास के १०० वर्ष बाद प्रियादास ने 'भक्तमाल' पर टीका रची थी। प्रियादास की टीका का रचनाकाल स० १७६९ माना जाता है। इस प्रकार डा० श्याम सुन्दरदास की तिथियाँ १६४२-१६८० अधिक प्रामाणिक नहीं प्रतीत होतीं। क्योंकि इस उपर्युक्त तिथि के आधार पर प्रियादास द्वारा लिखी गयी टीका का रचना-संवत् १७८० होता है जिसका अभी तक कोई भी संकेत इतिहास लेखक द्वारा नहीं प्राप्त है।

---

१. मिश्रवंधुमिश्रवंधु-विनोद, पृ० ३५७
२. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१५
३. मिश्रवंधु: मिश्र विनोद, पृ० ३५७

राधाकृष्ण दास ने नाभादास का स्थितिकाल सं० १७६९[1] माना है और इसके पक्ष में यह प्रमाण दिया है कि नाभादास ने प्रियादास को आज्ञा दी थी, 'भक्तमाल' पर टीका करने के लिए। इसी पक्ष का समर्थन करते हुए उन्होंने कुछ पंक्तियों को उदाहरण रूप में भी रखा है :

"महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मनहरन जू,
के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइयै।
ताही समय 'नाभाजू' ने आज्ञा दई, लई धारि,
टीका विस्तारि 'भक्तमाल' की सुनाइयै।
कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै,
जगै, जगमांहि, कहि बांणि विरमाइयै।
जानों निज मति, ऐसे सुन्यों, भागवत शुभ,
मुनि प्रवेश कियौ ऐसेई कहाइयै ॥"[2]

प्रियादास द्वारा रचित उपर्युक्त कवित के आधार पर राधाकृष्ण दास ने यह निष्कर्ष निकाला है कि नाभादास ने (प्रत्यक्ष रूप से) प्रियादास को टीका की आज्ञा दी थी। यह निष्कर्ष कवित की प्रथम दो पंक्तियों पर ही आधारित है। किन्तु वास्तव मे यदि सम्पूर्ण कवित को भली भाँति पढ़े तो स्पष्ट हो जाता है कि जब प्रियादास महाप्रभु के कीर्तन में तल्लीन थे, तभी उनको नाभादास का संदेश सुन पड़ता था और संदेशपूर्ण हो जाने पर वाणी विलीन हो गयी थी। टीका के सम्पूर्ण हो जाने पर अंत में प्रियादास के 'नाभाजू को अभिलाष पूरन लै कियो' भी कहा है। अतः स्पष्ट है कि इस तथ्य के आधार पर नाभादास को १७६९ संवत् तक स्थित मानना अनुचित है।

रामचन्द्र शुक्ल[3] ने नाभादास के समय के विजय में कहा है कि, "ये संवत् १६५७ के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे।" रामचन्द्र शुक्ल के मत से इस बात का भी स्पष्टीकरण हो जाता है कि नाभादास तुलसीदास के समकालीन रहे होंगे।

डा० राम कुमार वर्मा भी संवत् १६५७[4] को ही नाभादास का समय

---

१. सम्पादक राधाकृष्णदास, भक्तनामावली, भूमिका पृ० ९०, ९१
२. प्रियादास-कृत भक्तमाल की टीका
३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
४. डा० वर्मा : हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २११

मानते हैं। डा० वर्मा ने इस तिथि के विषय में कोई प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया, केवल इतना ही संकेत कर दिया है कि नाभादास का समय लगभग संवत् १६५७ था।

डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने भी नाभादास का अस्तित्वकाल संवत् १६५७ ही माना है। नाभादास जी गोस्वामी तुलसीदास से अयोध्या मिलने के लिए गये थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ध्यान में मग्न थे, अतः नाभादास से न मिल सके और नाभादास पुनः वृन्दावन को लौट गये। यह जानकर तुलसीदास स्वयं नाभादास से मिलने के लिये वृन्दावन आये। तुलसी का उदार हृदय देखकर नाभादास ने उन्हें 'भक्तमाल का सुमेरु' कह कर उनका विशद वर्णन 'भक्तमाल' में किया है। इससे इस बात का भी कुछ आभास होता है कि सम्भवतः तुलसीदास और नाभादास समवयस्क थे, कारण कि आयु का अधिक अंतर मिलन में व्यवधान डाल सकता है।[१]

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने नाभादास का समय संवत् १६५७ निर्धारित किया है। मिश्र जी के अनुसार दिया हुआ यह समय शुद्ध प्रतीत होता है कारण नाभादास तुलसीदास जी के समकालीन थे, तुलसीदास जी से प्रभावित थे। 'मानस' की रचना सं० १६३१ में प्रारम्भ हो चुकी थी। नाभादास जी तक रामकथा की यह पावन धारा अपने गुरु स्वामी अग्रदास द्वारा अवश्य पहुँची होगी। इसीलिए उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को भक्तों और कवियों में सबसे अधिक आदर दिया। मिश्र जी द्वारा निर्धारित यह संवत् सर्वथा विश्वसनीय और अध्ययन का आधार माना जा सकता है।

हरिऔध जी ने नाभादास का समय १७वीं शताब्दी निर्धारित किया है।[२] डा० दीनदयालु गुप्त ने नाभादास जी के समय के विषय में लिखा है कि 'भक्त-माल' के रचयिता नाभादास जी अष्टछाप के कवियों के समकालीन रामोपासक कवि थे। उन्होंने अपने समय के पूर्ववर्ती तथा समकालीन भक्तों के गुणगान किये हैं।[३] संतवाणी अंक, कल्याण के सम्पादक ने नाभादास के समय के विषय में लिखा है कि नाभादास का समय वि० सं० १६५७ के लगभग माना जाना चाहिए।[४]

१. डा० रसाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७-८८

२. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३४

३. डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १२६

४. संतवाणी अंक, कल्याण, पृ० ३७५

क्षितिमोहन सेन का कथन है कि "नाभादास का समय १६वीं शताब्दी मानना चाहिए ।"[१]

एच० एच० विल्सन[२] ने मलूकदास और नाभादास को समकालीन माना है। वास्तव में यह ठीक भी है कि मलूकदास नाभादास और ध्रुवदास सभी समकालीन थे। ध्रुवदास का प्रादुर्भाव अष्टछाप के कवियों के कुछ समय बाद ही हुआ था।[3] इस प्रकार ध्रुवदास आयु में नाभादास से कुछ कम अवश्य थे और मलूकदास की भी आयु नाभादास से कुछ ही वर्ष कम थी। मलूकदास जी का जन्म सवत् १६३१ है और इस तिथि के अनुसार नाभादास का जन्म संवत् लगभग १६२७ ठहरता है। 'भक्तमाल' में मलूकदास जी का वर्णन नहीं, मिलता है, इससे यह विदित होता है कि भक्तमाल बनने के समय तक मलूकदास जी का उदय नहीं हुआ था, नहीं तो अवश्य उनका वर्णन होता, क्योंकि एक तो ये नाभा जी के एक प्रकट से गुरुभाई थे, दूसरे बड़े महात्मा थे।[४] भक्तमाल में मलूकदास का वर्णन नहीं मिलता इसका अभिप्राय यह नहीं है कि नाभादास के समय में मलूकदास जी थे ही नहीं। इसी प्रकार ध्रुवदास की 'भक्तनामावली' में भी मलूकदास का उल्लेख नहीं मिलता, तो क्या ध्रुवदास के पश्चात् मलूकदास का समय अनुमानित किया जाय ? ध्रुवदास, मलूकदास, नाभादास सभी समकालीन रहे होंगे।[५]

अब तक नाभादास जी के समय के विषय में विद्वान् किसी एक निश्चित

---

१. डा० गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १२३

२. "And next comes the Bhakat Mal of Nabha who is supposed to have lived about the 16th century."

K.M. Sen. : Mediaeval Mysticism, p. 65.

३. "....we might therefore place Maluk Das where there is reason to place Nabhaji about the end of Akbar's reign ....."

H. H. Wilson : Essays and Lectures chiefly on the Religion of Hindus.

४. महावीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, निवंध प्रकाशित सम्मेलन पत्रिका।

५. महावीर सिंह गहलोत : भक्तमाल का रचनाकाल, निवंध

दास के पिता का नाम रामदास ही बताया है।[1] नाभादास के पिता भगवान राम के अनन्य भक्त तथा बड़े विद्वान् थे। गान विद्या में इनके पिता पारंगत थे।[2]

नाभादास अनाथ थे[3], इनका पालन-पोषण गुरु अग्रदास ने किया था। नाभादास "जन्मांध थे, बचपन में ही पिता मर गए। जब यह पाँच वर्ष के थे उस समय इस देश में घोर अकाल पड़ा था। माता इनका लालन-पालन न कर सकी, वन में छोड़ कर चली गयी। उधर कोल्ह जी अपने शिष्य अग्रदास के साथ आ निकले। उन लोगों को दया आयी। इन्हे अपने साथ अपने वासस्थान जयपुर के निकटवर्ती गलता स्थान में ले गए।[4] इस उपर्युक्त कथन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास के गुरु ने न का पालन-पोषण किया था।

गुरु

नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी थे। इस विषय में सभी विद्वानों में मत-साम्य है। नाभादास को कब उनके गुरु ने दीक्षा दी, इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता। नाभादास के गुरु के विषय में निम्नलिखित विद्वानों से हमें पर्याप्त सूचना मिल जाती है।

शिवसिंह सेंगर[5], मिश्रबंधु[6], डा० श्याम सुन्दरदास[7], रामचन्द्र शुक्ल[8], डा० रामकुमार वर्मा[9], सम्पादक संतवाणी[10] अंक कल्याण, क्षितिमोहन सेन[11]।

---

१. सम्पादक कालीचरण चौरसिया : भक्तकल्पद्रुम, पृ० १३

२. सम्पादक काली चरण चौरसिया : भक्तकल्पद्रुम, पृ० १३

३. "This Nabha as an orphan the Dom cast was picked up by Agradas of Vallabha sect who brought him up."

K. M. Sen : Mediaeval Mysticism, p., 65.

४. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली, पृ० ८९-९०

५. शिवसिंह सेंगर : सरोज

६. मिश्रबंधु-विनोद : पृ० ३७५

७. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३१५

८. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७

९. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २७८

१०. संतवाणी अंक, कल्याण, पृ० ३७५

११. मिडीवियल मिस्टिसिज्म, पृ० ६५

उपर्युक्त विद्वानो के मतो का परीक्षण कर लेना समीचीन होगा ।

'सरोज' मे लिखा है कि, 'कवि नाभादास अग्रदास जी के शिष्य' । इसी प्रकार 'मिश्रबधु-विनोद' मे लेखक ने नाभादास के गुरु का उल्लेख करते हुए कहा है कि, 'नाभादास महात्मा अग्रदास जी के शिष्य थे ।' इन विद्वानो ने केवल गुरु का नाम ही गिना दिया था, किन्तु आगे चलकर डा० श्याम सुन्दर दास[१] ने कहा कि, 'इनके गुरु अग्रदास, जिनकी प्रेरणा से इन्होने 'भक्तमाल' की रचना की थी, वल्लभ सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवि थे । अग्रदास ने भी कुछ राम भक्ति की कविता की है ।' डा० दास के विवरण से दो अन्य बातो का भी पता लगता है (क) अग्रदास कृष्णोपासक थे (ख) अग्रदास ने राम भक्ति की कविता की थी । अपने गुरु अग्रदास की आज्ञा से नाभादास ने भक्तमाल बनायी थी ।[२]

रामचन्द्र शुक्ल[३] ने कहा है कि, "नाभादास अग्रदास जी के शिष्य बडे भक्त और साधुसेवी थे ।" इसके अतिरिक्त गलता (राजस्थान) की प्रसिद्ध गद्दी मे अग्रदास जी रहते थे । इस विवरण से अग्रदास जी के निवास-स्थान के विषय मे भी सूचना मिल जाती है ।

सम्पादक सतवाणी अक-कल्याण से एक विशेष सूचना नाभादास के गुरु के विषय मे उपलब्ध होती है । उन्होने लिखा है कि," आपके गुरु का नाम अग्रदास ही है और आपको उन्होने ही पाला है" । गुरु द्वारा नाभादास के पालन-पोषण की बात सर्वप्रथम इन्ही से ज्ञात होती है ।

क्षितिमोहन सेन ने भी लिखा है कि नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास जी ने किया था ।[४]

इस विवरण से नाभादास के गुरु के विषय मे निम्नलिखित बातो का ज्ञान होता है :

(क) उनके गुरु का नाम अग्रदास था ।

(ख) नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास ने किया था ।

---

१. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३३४

२. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली, पृ० ९०

३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४६

४. This Nabha as orphan, the Dom cast was picked up by Agradas of Vallabha Sect who brought him up."
K. M. Sen : Mediaeval Mysticism, p. 65

(ग) अग्रदास कृष्णोपासक थे।
(घ) गलता (राजस्थान) की गद्दी में अग्रदास रहते थे।
(च) अग्रदास ने राम भक्ति विषयक कविता भी की थी।

जाति

महात्माओं के सम्मुख जाति-पाँति के बंधन बिलकुल क्षीण हो जाया करते हैं। हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक महात्मा निम्न कुल में उत्पन्न हुए और उनसे देश तथा समाज का भारी कल्याण हुआ। इस प्रकार समस्त भक्त कवियों के सम्मुख केवल एक 'हरि के भजन' का ही दृष्टिकोण था। ऊँच-नीच के भेद-भाव से ये महात्मा परे थे। संत साहित्य के बहुसंख्यक महात्मा निम्न जाति के ही थे जिनसे समाज और जाति का पर्याप्त कल्याण हुआ।

नाभादास की जाति के विषय में सब विद्वान् एकमत नहीं हो सके हैं। कोई उन्हें डोम, क्षत्रिय, और कोई उन्हें महाराष्ट्री ब्राह्मण बतलाता है। इस दिशा में निम्नलिखित विद्वानों के मतों का उल्लेख करना आवश्यक है :

(१) प्रियादास[१], रघुराजसिंह[२], (भक्तमाल के टीकाकार), रूपकला[३]
(२) मिश्रबंधु[४], रामचन्द्र शुक्ल[५], राधाकृष्ण दास[६], डा० रसाल[७], डा० रामकुमार वर्मा[८]
(३) क्षितिमोहन सेन[९]

सर्वप्रथम प्रियादास की टीका में नाभादास की जाति के विषय में कुछ संकेत से मिलते हैं। प्रियादास ने नाभादास को महाराष्ट्री ब्राह्मण बतलाया है। रघुराज-सिंह ने नाभादास की जाति के विषय मे लिखा है कि नाभादास 'लाङगूली ब्राह्मण' थे। रूपकला जी ने नाभादास की जाति के विषय में अपना वक्तव्य प्रस्तुत करते

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल की टीका, पृ० ४७
२. रघुराज सिंह-कृत रामरसिकावली (भक्तमाल की टीका)
३. रूपकला कृत भक्तिसुधा स्वाद-तिलक, पृ० ९
४. मिश्रबंधु : मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३५८
५. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४६-४७
६. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली, पृ० ८९
७. डा० रसाल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २८७
८. डा० वर्मा : हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० २७८
९. सेन : मिडीवियल मिस्टिसिज्म

हुए कहा है कि नाभादास जी डोम नहीं थे। टीकाकार रूपकला जी का कहना है कि पश्चिम में गान-विद्या में प्रवीण जातियों को विभिन्न नाम दिये गए हैं उनमें से कलावंत, ढाढ़ी और डोम आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। नाभादास के वंशज गान-विद्या में पारगत थे तथा राज दरबारों में गाया करते थे। गान-विद्या की श्रेणी-विभाजन के अनुसार नाभादास के वंशज 'डोम' श्रेणी में आते थे। इसीलिए नाभादास को डोम कहा जाता है।

मिश्रबंधु ने नाभादास को 'हनुमान वंशी' कहा है और लिखा है कि मारवाडी भाषा में 'हनुमान' शब्द 'डोम' के लिए प्रयुक्त होता है। अतः नाभादास डोम थे। एक अन्य विद्वान ने यह भी लिखा है कि वैष्णवों के जाति-पाँति वक्तव्य नहीं।[१]

रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि कुछ लोग नाभादास जी को डोम कहते है, कुछ लोग क्षत्रिय। यह विषय अब भी विवादग्रस्त है।

राधाकृष्णदास ने नाभादास को 'डोम' जाति का बतलाया है।

डा० राम कुमार वर्मा, डा० रसाल आदि विद्वानों ने इन्हें 'डोम' ही बतलाया है।

क्षिति मोहन सेन ने भी इन्हें डोम जाति का ही बतलाया है।[२]

इन समस्त मतों के परीक्षण के पश्चात् यही जान पड़ता है कि नाभादास सम्भवतः डोम जाति के ही थे, किन्तु फिर भी एक पहुँचे हुए भक्त और साधुसेवी थे। भक्तों के पुनीत चरित्रों का गुणगान कर नाभादास जी ने लोगों के हृदयों में भक्ति-धारा को प्रवाहित किया।

नाभादास जी के ग्रंथ

(१) भक्तमाल: नाभादास का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्तमाल' है। 'भक्तमाल' में कवि ने लगभग २०० भक्तों के पुनीत चरित्रों का गुण गान किया है। समस्त ग्रंथ छप्पय छंद में लिखा गया है। एक-एक छप्पय में एक-एक भक्त के चरित्र का अंकन कवि ने किया है और कहीं पर एक ही चरित्र के वर्णन में कवि ने कई छप्पय लिखे है। मिश्रबंधु[3] ने नाभादास के काव्य को 'तोष' कवि के काव्य की श्रेणी में रखा है।

---

१. मिश्रबंधु : मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५८

२. Nabha Das, as Dom cast was picked up by Agradas · · · · ."

K. M. Sen : Mediaeval Mysticism, p.65.

३. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३५७

इसके अतिरिक्त विद्वानों ने नाभादास के अन्य ग्रंथ भी बतलाये हैं। उन ग्रंथों का विवरण निम्नलिखित है :

(२) अष्टयाम : मिश्रबंधुओं[1] के अनुसार नाभादास ने दो अष्टयाम भी लिखे थे जिनको विद्वान लेखकों ने छतरपुर में देखा था। एक ब्रजभाषा गद्य में है और दूसरा छंदबद्ध है, विशेषतया दोहा, चौपाइयों में। रामचन्द्र शुक्ल[2] ने भी इसी विवरण का समर्थन किया है। हरिऔध जी ने अष्टयाम की कुछ पंक्तियाँ भी उदाहरण रूप में प्रस्तुत की हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में ब्रजभाषा काव्य के सभी नियमों का कवि ने पालन किया है :

"परिखा प्रति चहुँ दिसि लसत, कंचन कोट प्रकास।
विविध भाँति नग जगमगत प्रति गोपुर पुरवास।
दिव्य फटिकमय कोट की सोभा कहि न सिराय।
चहुँ दिसि अद्भुत ज्योति में जगमगाति सुखदाय।"[3]

डा० श्याम सुन्दर दास ने भी उन्हीं समस्त बातों की पुनरावृत्ति की है जिनका प्रसंग 'विनोद' में उपलब्ध होता है।

(३) रामचरित के पद : रामचरित के पद नामक ग्रंथ कुछ समय पूर्व त्रैवार्षिक खोज में मिला है। जिसका उल्लेख मिश्रबंधु, डा० श्याम सुन्दर दास, हरिऔध जी, डा० राम कुमार वर्मा आदि विद्वानों ने अपने ग्रंथों में किया है।

मृत्यु

नाभादास की मृत्यु का अनुमान करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास[4] ने कहा है कि नाभादास की मृत्यु लगभग १६८० संवत् के हुई थी। 'मिश्रबंधु विनोद'[5] में नाभादास की मृत्यु-तिथि विद्वान लेखकों ने संवत् १७०० के लगभग निर्धारित की है।

नाभादास का व्यक्तित्व

लेखक की रचनाओं में उसका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हुआ करता है। व्यक्तित्व के अनुकूल ही साहित्यकार की शैली का निर्माण होता है। 'भक्तमाल' की रचना.

---

१. वही, पृ० ३५७
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
३. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३५.
४. हिन्दी भाषा और साहित्य, पृ० ३३४
५. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ३७५

का हेतु और प्रयोजन स्वतः नाभादास की अभिरुचि और व्यक्तित्व कों प्रतिभासित कर देता हैं। नाभादास ने वड़ी उदारता के साथ भक्तों के चरित्र पर प्रकाश डाला है। भक्तों के चरित्र की उदारता, सरलता, धर्मनिष्ठा, सत्य-प्रियता, क्षमाशीलता, औदार्य, और सहज 'रहनी' तथा 'करनी' और 'कथनी' आदि को नाभादास ने विशेप रूप से उद्घाटित किया हैं। इससे स्पष्ट हो जाता हैं कि नाभादास स्वत. इन गुणो से युक्त थे। नाभादास का व्यक्तित्व बडा मधुर था। दम्भ का लेश भी उनका स्पर्श नही कर पाया था। वे मिथ्या गर्व से विहीन ओर प्रणति-सम्पन्न थे। उनकी अन्तरात्मा सत्यप्रिय और धर्म मे पगी हुई थी। नाभादास उदारचेता मनस्वी थे। ब्रह्म के प्रति उन्हे अखड विश्वास था। सरलता और भक्ति ने उनके दृष्टिकोण को व्यापक बना दिया था। इसीलिए उनके 'भक्तमाल' मे न तो साम्प्रदायिक विभेद ही दृष्टिगत होता है और न ऊँच-नीच का भेद-भाव ही।

श्री नाभादास-कृत 'भक्तमाल' हिन्दी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। इसकी लोक-प्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि कई भक्तो द्वारा इसकी टीकाएँ हुई। अनेक आत्म-ख्याति मे अरुचि रखने वाले भक्त कवियो की जीवनियो को प्रकाश मे लाने का श्रेय 'भक्तमाल' को ही है। किन्तु आश्चर्य का विषय है कि 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास जी का जीवन आज भी अंधकार मे है, और विवाद का विपय बना हुआ है!

आज के कुछ विद्वान 'भक्तमाल' की रचना मे कई भक्त कवियो का योगदान स्वीकार करते हैं। 'भक्तमाल' को नाभादास रचित न मानकर कुछ विद्वानो ने नारायणदास, तथा अग्रदास-कृत मानने का आग्रह किया है और निष्कर्प रूप मे इस बात पर विशेप जोर दिया है कि भक्तमाल की रचना नाभादास, नारायणदास के संयुक्त कर्तृत्व का परिणाम है। मूल ग्रंथ मे दो ऐसे छप्पय भी उपलब्ध होते हैं जिनमे अग्रदास की छाप है और इसी आधार पर यह सिद्ध करने का भी प्रयास किया गया है कि 'भक्तमाल' का कुछ अंश अग्रदास का लिखा हुआ है। वे छप्पय इस प्रकार है :

कविजन करत विचार वड़ौ कौउ ताहि भनिज्जै
कोउ कह अपनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै
सौ धारी सिर सेस, सेस सिव भूषन कीनौ
शिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनौ
रावन जीत्यौ वालि, वालि राघौ इक सायक दड़े
अंगर कहै त्रैलोक में हरि उर धरें तेई बड़े।

नेह परस्पर अघट निवहि चारों युग आयौ
अनुचर को उतकर्ष श्याम अपने मुख गायो
औत प्रौत अनुराग प्रीति सबही जग जानें
पुर प्रवेश रघुवीर भृत्य कीरति जु बखानैं
अगर अगुन गुन बरनत सीतापति नित हिय बस
हरि सुजस प्रीति हरिदास के त्यौं भावें हरिदास जस।

इन दोनों छप्पयों में अग्रदास की छाप है अवश्य, किन्तु वास्तव में नाभादास ने इन दोनों छप्पयों को श्रद्धापूर्वक अपने मूलग्रंथ में जोड़ दिया था। इसका प्रमाण 'भक्तमाल' की टीका 'भक्ति सुधा स्वाद तिलक' में भी मिलता है। रूपकला जी ने भी इस बात का समर्थन किया है कि अपने गुरु अग्रदास के इन छप्पयों को नाभादास ने श्रद्धापूर्वक अपने ग्रंथ के प्रारम्भ में स्थान दिया। विद्वानों ने इस आधार पर भी 'भक्तमाल' की रचना में अग्रदास का विशेष योगदान बतलाया है जो भ्रामक है।

'भक्तमाल' के प्रथम टीकाकार प्रियादास जी हुए। इन्होंने भी नाभादास को ही 'भक्तमाल' का मूल रचयिता माना है। यदि नारायणदास का योगदान मूल 'भक्तमाल' में माना जाय, तो फिर प्रियादास नाभादास के साथ-साथ नारायणदास का भी संकेत अवश्य करते। 'भक्तमाल' की टीका समाप्त करने के अनन्तर नाभादास के शिष्य प्रियादास जी ने लिखा है :

"रसिकाई कविताई जीन्ही दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाव हैं।
उर रंग भवन में राधिका रमन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिंब भाय हैं।
रसिक समाज में बिराज रंसराज कहैं चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं।
जन मन हरि लाल मनोहर नावँ पायो उनहूं को मन हरि लीनौ तातें राय हैं॥
इनहीं के दास दास-दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौं टीका सुखदाई हैं।
गोवर्द्धननाथ जू कें हाथ मन परचो जाको वास वृन्दावन लीला मिलि गाई है॥
मति अमान कह्यौ लह्यौ मुख संतनि के अंत कौन पावै जोई गावैं हिय आई है।
घट वढ़ जानि अपराध मेरो क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मनि मैं सुनाई है॥

तथा— (भक्तमाल—टीका प्रियादास—पृ० ९३९-४०)

"नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौं ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।
भक्ति विस्वास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै संतनि लड़ाइकै॥
संवत प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर फालगुन को मास वदी सप्तमी विताइ कै।
नारायणदास सुख रास 'भक्तमाल' लै कै प्रियादास दास उर वसौ रहौ छाइकै॥

(भक्तमाल—टीका प्रियादास—पृ० ९४१)

प्रस्तुत उद्धरणो मे कुछ पक्तियाँ विशेष ध्यान देने योग्य है। 'घट बढ जानि अपराध मेरो क्षमा कीजै' के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि ग्रथ मे क्रम के न होने का कारण दो रचयिताओ नाभादास और नारायणदास का सयुक्त कर्तृत्व नही है, वरन् प्रियादास की टीका करते समय यत्र-तत्र हेर-फेर हो गया होगा। "नाभाजू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ" तथा "नारायणदास सुखरास भक्तमाल लै कै प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै" आदि द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि नारायणदास और नाभादास दो भिन्न व्यक्तित्व न थे, अन्यथा प्रथम टीकाकार तथा नाभादास के शिष्य प्रियादास जी अवश्य इस रहस्य का उद्घाटन कर देते।

'भक्तमाल' की टीका—'भक्तिसुधा स्वाद तिलक' मे भी नाभादास द्वारा ही 'भक्तमाल' की रचना को मान्यता दी गयी है

"जाकौ जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो,
कियौ यो कवित्त पट मिहि मध्य लाल है।
गुण पै अपार साधु कहै आँक चारिही में,
अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है।
सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानौं,
घूमि रही, कहै यह कहा धो रसाल है।
सुने हे अगर अब जानै मै अगर सही,
चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है ॥७॥"[1]

'भक्तमाल' की अनेक टीकाएँ हुई किन्तु किसी ने भी नारायणदास को 'भक्तमाल' का मूल रचयिता नही माना, जैसा कि आज कुछ विद्वान सिद्ध करने का प्रयास कर रहे है।

इसके अतिरिक्त आज के विद्वान जाति के आधार पर भी नाभादास और नारायणदास के पृथक्-पृथक व्यक्तित्व का निर्माण करने का भरसक प्रयत्न कर रहे है और उनकी मुख्य दलील यह है कि, "कुछ लोग इन्हे क्षत्रिय कहते हैं, कुछ हनुमान वशीय डोम। मेरा ऐसा ख्याल है कि इनमे से एक जाति नारायणदास की और दूसरी नाभादास की।"[2] वास्तव मे नाभादास की जाति आज भी विवाद

१. रूपकलाजी : भक्तिसुधा स्वाद तिलक
२. डा० किशोरी लाल गुप्त : भक्तमाल के रचयिता नारायणदास और नाभादास, निबंध (जिला पंचायत पत्रिका, आजमगढ सन् १९५७)

का विषय है—कुछ विद्वान नाभदास को महाराष्ट्री ब्राह्मण बतलाते हैं (प्रियादास), कुछ क्षत्रिय और कुछ डोम। इस प्रकार नाभादास की जाति के विषय में विद्वानों में तीन मत प्रचलित हैं। क्या इन तीन विभिन्न मतों के आधार पर नाभादास के तीन विभिन्न व्यक्तित्वों का निर्माण किया जा सकता है ? कुछ विद्वानों ने नाभादास को ब्राह्मण जाति का ही बतलाया है। नाभादास के शिष्य प्रियादास, महराज रघुराजसिंह आदि ने नाभादास को ब्राह्मण जाति का माना है। पश्चिम में गान-विद्या में प्रवीण जातियों को विभिन्न नाम दिये गए हैं, उनमें से कलावन्त, ढाढ़ी और डोम अधिक प्रसिद्ध हैं। नाभादास के वंशज गान-विद्या में पारंगत थे तथा राज-दरबारों में गाया करते थे। गान-विद्या की श्रेणी विभाजन के अनुसार नाभादास के वंशज 'डोम' श्रेणी में आते थे। इसीलिए नाभादास को 'डोम' कहा जाता है।[1] हिन्दी के अधिकांश विद्वानों ने नाभादास को 'डोम' जाति का बतलाया है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणों की एक शाखा 'डोम', जो गान-विद्या में प्रवीण होते थे, नाभादास उसी जाति के थे।

डा० ग्रियर्सन ने 'भक्तमाल' के संयुक्त कर्तृत्व पर विशेष जोर दिया था, किन्तु इस भ्रम की उत्पत्ति नाभादास के नारायणदास नाम के कारण हुई। नाभादास का नारायणदास नाम कुछ भ्रामक अवश्य है और यही कारण है कि डा० ग्रियर्सन ने "हितोपदेश और राजनीति के अनुवादक नारायणदास तथा छंदसार के कर्त्ता नारायणदास तथा नाभा जी" तीनों व्यक्तित्वों को एक ही माना है।[2]

'भक्तमाल' में भक्तों तथा भक्त-कवियों के वर्णन में कोई क्रम नहीं दिखायी पड़ता। इस आधार पर भी 'भक्तमाल' के संयुक्त कर्तृत्व पर जोर दिया जाता है। नाभादास ने अपने शिष्य गोविन्द 'भक्तमाली' को भक्तमाल कंठस्थ करवा दी थी और गोविन्द द्वारा भक्तमाल में हेर फेर होना सम्भव है[3] जो क्षम्य है।

नाभादास का ही दूसरा नाम नारायणदास था। अतः 'भक्तमाल' में यदि नारायणदास नाम की अधिक छाप हो तो इससे अन्य किसी व्यक्ति की कल्पना करना समीचीन नहीं। एक व्यक्ति के दो नाम भी हो सकते हैं।

---

१. रूपकला कृत भक्ति सुधा स्वाद तिलक, पृ० ९

२. सम्पादक-राधाकृष्णदास, भक्तनामावली, पृ० ९०

३. प्रियादास : भक्तमाल-टीका छप्पय संख्या १९२

चतुर्थ परिच्छेद

भक्तमाल का वर्ण्य-विषय

अपने गुरु अग्रदास से आज्ञा पाकर नाभादास (नारायणदास) जी ने 'भक्तमाल' की रचना कर, अनेक भक्तों के पुनीत चरित्रों के यश का वर्णन किया है। 'भक्तमाल' में अनेक भक्तों के लौकिक चरित्रों का वर्णन कर, नाभादास जी ने उनके महत्त्व को जो विशिष्टता प्रदान की है, वह जनता के लिए एक नवीन आकर्षक सामग्री थी। संस्कृत के विद्वान हिन्दी-साहित्य को हेय समझते थे, अतः भक्त कवियों को भी जिन्होंने अपने भाव प्रकाशन का माध्यम हिन्दी भाषा को बनाया था, वे हीन समझते थे। ऐसे भक्त कवियों को नाभादास ने 'भक्तमाल' के माध्यम से जनता तक पहुँचाया। धीरे-धीरे ऐसे भक्त भी प्रकाश में आने लगे। 'भक्तमाल' में दो सौ भक्तों के चरित्र संगृहीत हैं। चरित्रों के इस संकलन में कवि ने भक्तों के चरित्रों के ऐसे उज्ज्वल पक्षों को ही सम्मुख रखा है, जो उनके महत्त्व को बढ़ाने में सहायक हुए हैं। किसी भी भक्त का सम्पूर्ण जीवन, इन भक्तों के विवरण में पूरे तौर से उद्घाटित नहीं हो सका। भक्तों के यह वर्णन प्रशंसात्मक और कुछ अलौकिकता को लिए हुए हमारे सम्मुख आते हैं। कवि नाभादास ने भक्तों के महत्व बढ़ाने में जो सक्रिय कार्य किया है, उसका अपना स्वयं का महत्त्व है।

साहित्य-सर्जना के पीछे साहित्यकार का दृष्टिकोण विशेष कार्य किया करता है। कार्य और कारण का घनिष्ट सम्बंध है। बिना कारण के कार्य नहीं सम्पन्न होता। कवि केवल भावुकता के बहाव में बह कर ही काव्य की सृष्टि नहीं करता, वरन् अपने काव्य को माध्यम बनाकर, दूसरों तक सदेश भेजता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि काव्य में जीवन के अनेक तत्व सन्निहित रहते हैं।

"साहित्यकार एक ज्योति है, एक मशाल है, जो स्वतः जलकर जनता का पथ आलोकित करता है। उसके साहित्य में जनता के अनेक मूक-तार झंकृत हुआ करते

हैं।"[1] वास्तव में किसी भी साहित्यकार की कृति में समाज का सजीव चित्र प्रतिबिंबित हुआ करता है। समाज से ही साहित्यकार अपने साहित्य के भरण-पोषण के लिए सामग्री एकत्र करता है। साहित्य और समाज में घनिष्ट सम्बंध है। समाज के वातावरण से सामग्री ग्रहण कर, साहित्यकार अपने साहित्य का निर्माण करता है। साथ ही साथ साहित्यकार साहित्य के द्वारा समाज को अनेक संदेश भी दिया करता है, तथा संदेश का साधारणीकरण होना ही साहित्यकार की सफलता का मापदंड है।

मनुष्य का हृदय-मंदिर नाना प्रकार की अनुभूतियों और भावनाओं का केन्द्र हुआ करता है। स्वभावतः मनुष्य अपने विचारों और अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने के लिए उत्सुक रहा करता है। अपनी अनुभूतियों को कल्पना के रंग में अनुरंजित कर, दूसरों को रस-विभोर करने का, उद्देश्य ही साहित्यकार का प्रथम दृष्टिकोण हुआ करता है। साहित्यकार इसी सूत्र से प्रेरणा पाकर साहित्य सर्जना करता है। साहित्य और जीवन का घनिष्ट सम्बंध है। प्रत्येक का अस्तित्व एक दूसरे पर पूर्णतया निर्भर रहता है। "साहित्य का प्रयोजन एवं जीवन का प्रयोजन अथवा उनके अंतिम लक्ष्य में परस्पर नैकट्य का सम्बंध है। यदि साहित्य जीवन से प्रभावित भी है, तो वही साहित्य जीवन दर्शन के लिए उपयोगी तथ्यों एवों तत्वों की सर्जना भी करता है।"[2] साहित्य की धारा अनादि काल से ही अबाध गति से हमारे जीवन के धरातल पर सतत प्रवहमान है।

गद्य की अपेक्षा, पद्य में प्रभावित करने की शक्ति अधिक हुआ करती है। पद्यमय भाषा मे कही हुई बात हमारे मस्तिष्क मे घर कर लेती है। इसका प्रभाव स्थायी हुआ करता है। यही कारण है कि उपदेशों के लिए अनेक कवियों ने कविता का ही सहारा लिया है। कवि नाभादास ने भी काव्य के माध्यम से भक्तों के चरित्रों का वर्णन कर उन्हें जनता के मध्य स्थायित्व प्रदान किया है। इस प्रयास से जनता के मध्य भक्तों का आदर और सम्मान अधिक बढ़ गया था।

काव्य के प्रयोजन के विषय मे विद्वानों मे बड़ा मत-भेद है। आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रयोजन के विषय में कहा है कि व्यवहार-ज्ञान, दुःख का विनाश ही काव्य रचना का मूल प्रयोजन है :

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : प्रेमचन्द, परिशिष्ट, पृ० २७

२. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २०६

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कांता सम्मिततयोपदेश युजे ॥"[१]

कुछ विद्वान आनन्द को ही काव्य का मूल-प्रयोजन मानते है । भामह के अनुसार काव्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन है

"धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च ।
प्रीति करोति कीर्तिञ्च साधु काव्य निषेवणम् ॥"

'साहित्यदर्पणकार' भामह के इस कथन से पूर्णतया सहमत है ।[२] भरत-आनन्दवर्धन तथा अभिनव गुप्त आदि विद्वान नैतिक तथा धार्मिक विकास के लिए, काव्य का प्रयोजन नहीं मानते । पाश्चात्य विद्वानों मे भी काव्य के प्रयोजन के विषय मे मतसाम्य नही है । स्पिनवर्ग के मत से काव्य का उद्देश्य शिक्षा एव आनन्द देना ही नही हैं, वरन् उसका लक्ष्य है अभिव्यक्ति ।[३] ब्रेडले के मतानुसार काव्य स्वय अपना साध्य है, वह धर्म, सस्कृति, शिक्षा आदि का साधन नही है । टाल्सटाय काव्य की मुख्य कसोटी नीति और धर्म को मानते है ।[४] "मैथ्यू आर्नाल्ड नैतिकता के प्रति विद्रोही एव उदासीन काव्य को जीवन के प्रति विद्रोही एव उदासीन मानता है ।"[५] टी० एस० इलीयट का कहना है कि काव्य का

१. काव्य-प्रकाश, श्लोक २

२. गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० ४५

३. We have done with all moral judgment of art... Some said that poetry was meant to instruct. Some merely to please some to do both. Romantic-criticism first enunciated the principle that art has no aim except expression, that its aim is complete when expression is complete, that beauty is its own excuse for being.

४. In every age and in every human there exists a religious sense of what is good and what is bad common to that whole society and it is this religious conception that decides the values of the feelings transmitted by art.

What is Art (Oxford) 128-29.

५. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २०७-२०८

नैतिकता, धर्म भावना और सम्भवतः राजनीति से भी कुछ सम्बंध है, यद्यपि उन्हें स्वयं यह सम्बंध ज्ञात नही है ।[1] आई० एस० रिचर्ड के विचार बहुत कुछ मम्मट से साम्य रखते है । इस विद्वान् के अनुसार कवि अपनी कविता स्वांतःसुखाय या उपदेश देने के लिए करते हैं और कभी-कभी दोनों दृष्टिकोणों से भी ।[2] पाश्चात्य विचारक प्लेटो, अरिस्टाटिल, होरिस, दांते, मिल्टन आदि भारतीय विचारक भरत, आनन्द वर्धन एवं अभिनवगुप्त आदि से बहुत कुछ मत-साम्य रखते है ।

उक्त समस्त विद्वानों के काव्यादर्श एवं काव्य के प्रयोजन विषयक मतों के अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी के संत कवियों का दृष्टिकोण इनसे पर्याप्त भिन्न था । संतों के काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें लौकिक ऐश्वर्य एवं यश की लालसा नही थी । संत भौतिक जगत मे रहते हुए भी भौतिकता एवं इस सासारिकता से परे रहते थे । व्यवहार आदि की शिक्षा संतों के काव्य में अधिक उपलब्ध नही होती है । रूढ़ियों और आडम्बर के विरुद्ध संतों की विद्रोही भावनाओं का विस्फोट हुआ । काव्य के प्रचलित आदर्श भी इन संत कवियों को मान्य नही थे । ये संत कवि 'लीक' से 'बेलीक' चलकर अपनी अक्खड़ता को जनता के सम्मुख रखना चाहते थे । परम्पराओं में बँधकर चलना इनके स्वभाव के विरुद्ध था । कविता मे इन संत कवियों ने भाव को ही प्रधानता दी थी । पिंगल शास्त्र के नियमो की संतों ने अवहेलना की । फिर भी संत कवियो के कुछ काव्यादर्श थे । वास्तव मे इन कवियो की देन साहित्य के क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखती है ।

समय के साथ-साथ साहित्यिक मापदडो और आदर्शो मे परिवर्तन उपस्थित होते रहते है । देश की राजनैतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियो के परिणाम-स्वरूप, देश का साहित्य भी एक नवीन रूप धारण कर लिया करता है । हिन्दी काव्य के आदिकाल से सत-काव्य तक काव्य के दो रूप हमारे सम्मुख आते है । प्रथम है धार्मिक प्रवृत्ति से सम्बद्ध और द्वितीय है चारण-प्रवृत्ति से सम्बद्ध ।

---

१. . . . . Poetry as certainly has something to do with morals and with religion, and even with politics perhaps, though we cannot say what.

The Sacred wood, 1928 Edition.

२. I. S. Richard : Principles of Literary Criticism (Tenth Impression)

संत-काव्य मे निहित प्रयोजन विषयक सामग्री पर यहाँ विचार करना समीचीन होगा ।

सत-काव्य धारा के प्रवर्तक कबीर ने कवि और कविता के विषय मे कुछ अधिक नही कहा है, किन्तु फिर भी कबीर के काव्य से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी दृष्टि मे कवि सामान्य व्यक्ति से उच्च स्तर का हुआ करता है । कबीर कवि को मृत समझते थे :

'कवि कवीने कविता मुये'

कबीर उसी को सच्चा कवि मानते थे जो तत्व के अनुभव का गायन करे—

जग भव का गावना का गावै ।
अनुभव गावै सो अनुरागी है ।।

संत कवि नानक ने काव्य को राम नाम के मार्ग मे एक बाधा के रूप मे देखा था । उनका कहना था कि राम नाम के मार्ग मे काव्य बाधा उपस्थित करता है । शब्द, साखी आदि से भगवान की कृपा नही प्राप्त हो सकती । अत. काव्य मे व्यर्थ के लिए समय न नष्ट करके भगवान का भजन करना चाहिए जिससे मृत्यु के पश्चात् आत्मा को कष्ट न भोगना पडे .

"शब्दन साखी सची नहीं प्रीति ।
जमपुर जाँहि दुखाँ की रीति ।।" (प्रांण-संगली, पृ० २४)

संत कवि मलूकदास का काव्यादर्श नानक और कबीर की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है । मलूकदास प्राकृत विषयो पर काव्य-रचना को हेय समझते थे । काव्य-रचना का उद्देश्य तो ब्रह्म की प्रशसा एवं गुण-गान ही होना चाहिए .

"अदम कबित्त का जिसकी कबिताई करूँ,
याद करूँ उसको जिन पैदा मुझे किया है ।
गर्भबास पाला आतस में नहिं जाला,
तिसको मैं बिसारूँ तो मैं किसकी आस जिया हूँ ।।"[१]

जगजीवन साहब ने वेद, पुराण आदि की कटु निंदा की है । उनका कहना है कि बिना भजन, बिना भक्ति के सब कुछ नि.सार है, चाहे वह काव्य-रचना हो अथवा ग्रथ रचना ।[२] तत्व को त्याग कर व्यर्थ मे ही कवि तत्व रहित पदार्थो मे फँसे रहते है :

१. मलूकदास की बानी, पृ० ३१
२. त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २१९

"पढ़ै पुराण ग्रंथ रात दिन करै कविताई सोई ।
ज्ञान कथै शब्द कहै, कहु तवहू भक्ति न होई ।।"[१]

संत कवि शिवनारायण साहब के अनुसार ब्रह्म के गुणों की अभिव्यक्ति करना ही काव्य का प्रमुख ध्येय है । इसके अतिरिक्त उन्होंने उसी कविता को कल्याणकारी माना है जिसमें संतों द्वारा ब्रह्म का गान हुआ हो ।

"संत सबद सुनि भो अनुरागा ।
विनु गुरु भक्ति मुक्ति किमि लागा ।"[२]

"सुन्दरदास का काव्यादर्श सर्वप्रथम ब्रह्म का यशोगान है, तदनन्तर काव्य-सौंदर्य, काव्य-सरसता आदि ।"[३]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सभी संत कवि काव्य का प्रयोजन ब्रह्म का गुण-गान ही मानते थे । यह सभी कवि 'स्वांतःसुखाय' काव्य की सर्जना करते रहते थे ।

कृष्णोपासक और रामोपासक अनेक कवियों ने अपना काव्य 'स्वांतः सुखाय' के दृष्टिकोण से ही निर्मित किया था । तुलसी, सूर आदि जैसे हिन्दी के महान् कवियों के सम्मुख भी काव्य का एक निश्चित प्रयोजन अवश्य ही रहा होगा । उनके अपने कुछ काव्यादर्श भी थे । यह भक्त कवि भी भगवान की लीला का वर्णन काव्य के माध्यम से करते थे । तुलसी के सम्मुख काव्य लिखने का ध्येय केवल यही था कि भगवान के पुनीत निर्मल चरित्र का वर्णन काव्य के माध्यम से हो । मनुष्य चरित्र का वर्णन काव्य के माध्यम से करने पर सरस्वती भी सिर धुनती हैं ।[४] तुलसी के काव्यादर्श भी उनके काव्य से प्रकट हुए हैं । कविता के लिए विवेक (बुद्धि) एक अनिवार्य तत्व है :

"कवित विवेक एक नहिं मोरे ।
सत्य कहउं लिखि कागद कोरे ।।"[५]

---

१. शब्द-संग्रह, पृ० ७५
२. गुरु-अन्यास, पृ० १९
३. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २२७
४. कवि कोविद अस हृदय विचारी । गाँवहि हरि जस कलमल हारी ।।
कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।।
रामचरित मानस, मूल गुटका, २३ वाँ संस्करण, पृ० ४२
५. तुलसी : रामचरित मानस

काव्य के लिए सरलता सरसता आदि भी आवश्यक तत्व है। कारण कि काव्य तो मनुष्य को रस मग्न कर देने का एक प्रमुख साधन है :

"सरल कबित कीरति विमल, सोइ आदरहि सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहि बखान।"[१]

तुलसीदास जी का मत था कि, **"कीरति भनति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।"[२]** गोस्वामी जी के मत से कवित्व निर्मल और सरल ही अधिक श्रेयस्कर होता है। तुलसीदास जी को रामचरित विपयक काव्य लिखने की निर्मल वुद्धि शंकर के प्रसाद से प्राप्त हुई थी, कारण कि शंकर ही रामचरित के सर्वप्रथम लेखक थे।[३] सूर के काव्यादर्श विषयक विचारो की अभिव्यक्ति उनके साहित्य मे नही हुई है परन्तु उनके काव्य का उद्देश्य धार्मिक भावना से पूर्ण तथा आनन्ददात्मक था। "जहाँ तक कविता का कलापक्ष है, वे संस्कृत काव्य से प्रभावित थे।"[४] केशवदास आचार्य के रूप मे विख्यात है। कवि कर्म का उल्लेख करते हुए उन्होने लिखा है :

"चरण धरत चिन्ता करत, नींद न भावत शोर।
सुवरण को सोधत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर॥"[५]

फिर उनका विश्वास था कि उत्तम कोटि के कवि हरि रस मे लीन रहते है :

"केशव तीनहुँ लोक में विविध कविन के राय।
मति पुनि तीन प्रकार की वर्णत सब सुख पाय॥
उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरिरस लीन।
मध्यम मानत मानुषिन, दोष अधम प्रवीन॥[६]

केशवदास जी का काव्यादर्श वड़ा महत्त्वपूर्ण है।

नाभादास के समकालीन कवियो के काव्यादर्श का अध्ययन कर लेने के पश्चात् अव 'भक्तमाल' मे व्यक्त काव्यादर्श विपयक भावनाओ का अध्ययन करना आवश्यक है। यह तो पीछे कहा ही जा चुका है कि नाभादास भक्त कवि थे। वे पहले भक्त थे, तदनन्तर कवि। इसीलिए काव्य के आदर्श-विपयक

---

१. वही २. वही
३. शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी, राम चरित मानस कवि तुलसी।
४. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ० ३४४
५. कविप्रिया ६. कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव, छंद १-२

विचार उनके ग्रंथ में कहीं पर स्पष्ट रूप से नहीं व्यक्त हुए हैं। परन्तु फिर भी 'भक्तमाल' में यत्र-तत्र कुछ ऐसे कथन मिल जाते हैं जिनसे नाभादास का काव्यादर्श निर्धारित किया जा सकता है। इस दृष्टि से कवि के निम्नलिखित छंद पठनीय होंगे :

"जग कीरति मंगल उदै, तीनों ताप नसायँ।
हरिजन को गुण बरनते, हरि हरदि अटल बसायँ ॥[1]
जो हरि प्राप्ति की आस है, तो हरिजन गुन गाय।
नतकसुकृत भुँजे बीज ज्यों, जनम जनम पछिताय ॥[2]
भक्त दाम संग्रह करै, कथन, स्रवन अनुमोद।
सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यौं, बैठे हरि की गोद ॥[3]
भक्त दाम जिन जिन कथी, तिनकी जूँठनि पाय।
मों मतिसार अक्षर द्वै, कीनौं सिलौ बनाय ॥"[4]

प्रस्तुत उद्धरणों मे से अंतिम छंद विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। कवि नाभादास ने अपनी विनयशीलता का परिचय देते हुए कहा है कि,"जिन जिन यशस्वी और उदार चेता कवियों ने भगवत् भक्तों के सुयश का वर्णन किया है और भक्तों के शुभ्र चरित रूपी माला को हरि चरणों में समर्पित किया है, उन्हीं की 'जूठनि पाय' कर अपनी अल्प मति के अनुसार दो-चार अक्षरों को मिलाकर 'भक्तमाल' की रचना मैंने की है।" स्पष्ट है कि कवि का ध्यान काव्य-रचना की ओर इतना नहीं गया जितना भक्तों के उज्वल चरित की ओर। कवि के मत से ब्रह्म को वही प्रिय है जो भक्तों के चरित का संग्रह, गान और अनुमोदन करता है। काव्य के सम्बंध में इस प्रकार की धारणा लेकर नाभादास ने भक्तमाल की रचना की थी।

नाभादास के कवित्व का लक्ष्य था ब्रह्म का गुणगान करने वाले तथा समय-समय पर जनता को हरिरसामृत सिन्धु में अवगाहन करानेवाले भक्तों और भक्त-कवियों का यशोगान और गुणगान करना। इन चरित्रों और चरितों को जनता के समक्ष व्यक्त करके उसे कल्याण के पथ पर अग्रसर करने के

---

१. भक्तमाल, पृ० ९३६
२. भक्तमाल, पृ० ९३७
३. भक्तमाल, पृ० ९३७
४. भक्तमाल, पृ० ९३८

लिए भक्तमाल की रचना हुई थी । इसी कारण नाभादास की इस रचना मे तुलसीदास और सूरदास का कवित्व, केशवदास का आचार्यत्व, देव और मतिराम का पद-लालित्य, नन्ददास का-सा शब्द-चयन, विहारी का काव्य-सौष्ठव' विद्यापति का माधुर्य, कालिदास की उपमाएँ खोजना उनके कवि के प्रति अन्याय करना होगा ।

'भक्तमाल' की रचना नाभादास ने अपने गुरु से आज्ञा पाकर की थी। अग्रदास ने नाभादास को यह उपदेश किया कि इस भव के पार जाने का सुगम मार्ग एक यही है कि भक्तो का गुण गान किया जाय । इससे उत्तम, सरल और सुलभ मार्ग दूसरा नही है :

"उन हरि आज्ञा पाय, सकल ब्रह्मांड उपायो ।
इन गुरु आज्ञा पाय, भक्त निर्णय को गायो ।।"[1]

भक्तो के चरित्रो का वर्णन नाभादास जी ने 'भक्तमाल' मे श्रद्धा-पूर्वक किया है । इसमे वर्णित चारो युगो के भक्तो की माला रसपूर्ण है जो भक्त-हृदय को रस-विभोर कर देती है :

"चार युगन के भक्त गुणन की गूँथी माला ।
अंगहि अंग विचित्र बनी यह परम रसाला ।।"[2]

भक्त के महत्व का निर्देश तुलसीदास जी ने भी किया है कि 'राम ते' 'अधिक राम' का 'दास' हुआ करता है । 'भक्त' भगवान तक पहुँचने की एक मध्यम कड़ी है । सच्चा भक्त वही है जिस पर भगवान की कृपा हो । 'भक्त' और 'भगवान' के भजन से अनेक पापो का विनाश होता है और यही दो सुगम साधन है जिनका निर्देश वेद, पुराण सभी ने किया है :

"सब संतन निर्णय कियो, श्रुति, पुराण, इतिहास ।
भजबे को द्वौ सुघर है, की हरि, की हरिदास ।।"[3]

वास्तव मे भक्त की स्थिति भगवान के सदृश्य ही हुआ करती है। कारण कि वह इस विश्व मे रहता हुआ भी निर्लिप्त रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि कमल जल मे ही उत्पन्न होता है, किन्तु वह सदैव जल के धरातल से ऊपर रहता

---

१. प्रियादास-कृत सम्पादित रूपकला द्वारा टीका भक्तमाल
२. प्रियादास-कृत सम्पादित रूपकला द्वारा टीका भक्तमाल
३. टीका प्रियादास, टिप्पणी रूपकला द्वारा ।

"भक्तों के चरित सदा ही नवीन हैं, सदा ही मंगलमय हैं, सदा ही सात्विक स्फूर्तिदायक हैं एवं सदा ही चिंतन, मनन और सेवन करने योग्य हैं।...आदर्श, व्यवहार, इन्द्रिय मन पर विजय, पवित्र सेवा-भाव, त्याग और तपस्या, विषय-विरक्ति भगवद्भक्ति और प्रेम आदि का सच्चा स्वरूप उपदेशों में नहीं मिलता। वह तो भक्त चरितों में ही प्रत्यक्ष प्राप्त होता है।"[1] वास्तव में भक्तों का चरित्र गंगाजल की भाँति पवित्र, सूर्य की किरणों की भाँति प्रखर होता है जिससे कलुषता का विनाश हो जाता है, सर्वत्र प्रकाश का साम्राज्य छा जाता है। जीवन को भौतिकता की ओर से आध्यात्मिकता की ओर ले जाना 'भक्तमाल' जैसे ग्रंथ का ही काम है।

'भक्तमाल' में दो सौ भक्तों का संक्षिप्त वृत्तान्त दिया गया है। क्या भारतीय धर्म के इतिहास में केवल यही दो सौ भक्त आविर्भूत हुए थे, जिनके चरित्रों का विवरण 'भक्तमाल' में मिलता है अथवा और भी भक्त थे जिनका संचयन ग्रंथकार ने नहीं किया। निस्संदेह इन भक्तों के अतिरिक्त भी अनेक भक्त हुए हैं, कुछ तो ऐसे भी संत हुए हैं जो नाभादास के समकालीन होते हुए भी इस ग्रंथ में स्थान न पा सके। भक्तों के चरित्रों के संचयन में प्रेरणा देने वाले जो मूल-सिद्धान्त कार्य करते हैं वे बहुधा ये हैं :

(क) संचयनकर्त्ता की किसी विशेष सम्प्रदाय के प्रति आस्था।

(ख) कुछ चुने हुए भक्त-कवियों के काव्य के प्रति ही आकर्षण कुछ विशेष कवियों के काव्य के प्रति ही नाभादास आकर्षित हुए हों।

(ग) किसी युग विशेष के, विशेष भक्त-कवियों को मान्यता देने की भावना।

सम्भवतः नाभादास के सम्मुख भी ये बातें रही हों। नाभादास के विषय में यहाँ उक्त सिद्धान्तों के आधार पर विचार करना समीचीन होगा।

(क) सम्प्रदाय के प्रति आस्था : कवि नाभादास रामानन्दी सम्प्रदाय के थे। चरित्रों के संचयन के समय अवश्य ही यह प्रश्न रहा होगा कि अमुक सम्प्रदाय के कवियों (भक्तों) का विवरण अधिक विस्तार के साथ दिया जाय। नाभादास ने राम भक्त कवियो का उल्लेख बड़ी ही श्रद्धा पूर्वक किया है और तुलसीदास जी को तो 'भक्तमाल' का 'सुमेरु' तक कह दिया है। निस्संदेह तुलसी प्रशंसा के अधिकारी थे, किन्तु फिर भी रामोपासक कवियों, भक्तों के चरित्र-अंकन मे नाभादास की श्रद्धा पूरे तौर से परिलक्षित होती है। हो सकता

---

१. सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार : कल्याण भक्त चरितांक, पृ० ८०७

४

है कि नाभादास की सम्प्रदाय के प्रति आस्था ने ही उन्हें 'रामभक्ति' के कवियों को अपेक्षाकृत अधिक महत्ता प्रदान करने के लिए विवश किया हो। चरित्रों के संचयन में अपने सम्प्रदाय का आकर्षण होता ही है। यदि नाभादास ने भी अपने सम्प्रदाय के भक्तों के प्रति अधिक श्रद्धा के भाव प्रकट किये हैं, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

(ख) भक्त कवियों के काव्य के प्रति आकर्षण : किसी कवि विशेष के काव्य के प्रति जो आकर्षण हुआ करता है, उसके अनुसार भी संचयन में स्थान निर्धारित किया जाता है। कवि नाभादास किसी भक्त-कवि के काव्य से प्रभावित थे, इसके विषय में कोई विशेष प्रमाण हीं मिलता। किन्तु फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नाभादास के मस्तिष्क पर तुलसी के काव्य का विशेष प्रभाव पड़ा था। तुलसी के 'मानस' के विषय में नाभादास ने कहा भी है कि कविकाल में यह एक नौका के समान है, जो मानव को भवसागर के पार पहुँचा सकती है :

"संसार अपार के पार को सुगम रीति नौका लयौ।"[1]

सूरदास जी के काव्य की भी नाभादास ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। भक्त-कवियों से प्रभावित होने का प्रमुख सोपान उनका काव्य ही हुआ करता है। यदि चरित्रों के संचयन के समय नाभादास जी के मस्तिष्क में इस प्रकार की कोई बात रही हो, तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

(ग) किसी युग विशेष के भक्तों से प्रभावित : भक्तों अथवा कवियों के निर्माण में युग-विशेष की परिस्थितियाँ भी कार्य किया करती हैं। काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं।"[2] नाभादास, तुलसी तथा अष्टछाप के कवियों के समकालीन थे। जितना प्रामाणिक विवरण उन्होंने अपने युग के कवियों का प्रस्तुत किया है, उतना अन्य युगों के कवियों का नहीं। वास्तव में जितना हम अपने समय के विषय में जान सकते हैं, उतना अपने पूर्वजों के विषय में नहीं। यही तथ्य नाभादास के चरित्र-संचयन के विषय में भी लागू होता है। अन्य भक्तों का विवरण नाभादास ने सुनी-सुनायी बातों के आधार पर दे दिया है।

नाभादास ने सीधे-सादे ढंग से भक्तों के चरित्रों का विवरण प्रस्तुत किया

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल टीका, द्वितीय संस्करण, पृ० ७६२

२. डा० श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली (भूमिका)

हैं। जो-जो भक्त प्रणयन के समय उनके सम्मुख आते गए उन्हें वे 'भक्तमाला' में पिरोते गये। नाभादास जी ने मलूकदास, धरमदास आदि पहुँचे हुए भक्तों का उल्लेख 'भक्तमाल' में नहीं किया। इससे यह संदेह होता है कि क्या ये भक्त-कवि नाभादास के समय तक जनता में अधिक प्रसिद्धि न पा सके थे। ध्रुवदास का भी उल्लेख भक्तमाल में नहीं उपलब्ध होता।

मलूकदास का उल्लेख 'भक्तमाल' में नहीं मिलता। इसके विषय में राधाकृष्ण दास का कहना है कि, "भक्तमाल में मलूकदास जी का वर्णन नहीं है, इससे यह विदित होता है कि भक्तमाल बनने के समय मलूकदास जी का उदय नहीं हुआ था, नहीं तो अवश्य उनका वर्णन होता, क्योंकि एक तो यह नाभा जी के प्रकट से गुरुभाई थे, दूसरे ये बड़े महात्मा थे।"[1] वास्तव में नाभादास और मलूकदास समकालीन थे।[2] फिर यह कैसे मान लिया जाय कि 'भक्तमाल' के बनने के समय मलूकदास का उदय नहीं हुआ था। मलूकदास का 'भक्तमाल' में उल्लेख नहीं है। इसका कारण व्यक्तिगत अभिरुचि और सैद्धान्तिक मतभेद प्रतीत होता है, क्योंकि जब मलूकदास भक्तों के चरित्र का गायन 'ज्ञान बोध' में करने बैठे, तो नाभादास का उल्लेख नहीं किया।

ध्रुवदास का भी उल्लेख 'भक्तमाल' में नहीं मिलता। ध्रुवदास और नाभादास एक दूसरे के समकालीन थे।[3] किन्तु फिर भी नाभादास 'भक्तमाल' में ध्रुवदास के लिए मूक हैं और ध्रुवदास 'भक्तनामावली' में तुलसी जैसे विख्यात कवि के लिए। धरमदास का उल्लेख 'भक्तमाल' में नहीं हुआ। कवि नाभादास के पास भक्तों के नामों की कोई सूची नहीं रही होगी जिसके आधार पर वह भक्तों के चरित्रों का वर्णन करते। जैसे जैसे उन्हें भक्त-चरित्र याद आते गए होंगे, वैसे वैसे उनके वर्णन भी स्वतः 'भक्तमाल' में आते गए होंगे। अतः कुछ भक्तों का छूट जाना स्वाभाविक ही है।

'भक्तमाल' में कलियुग के भक्तों का जो विवरण मिलता है, वह किसी क्रम को लेकर नहीं चलता। हो सकता है कि जैसे-जैसे नाभादास को 'भक्तमाल' के प्रणयन के समय भक्त स्मृति में आते गए होंगे, वैसे ही वैसे उनका विवरण

---

१. सम्पादक राधाकृष्ण दास: भक्तनामावली, पृ०९१। (ना० प्रा० स० काशी)

२. H. H. Wilson : Essays & Lectures on the Religion of Hindus.

३. महावीर सिंह गहलोत: भक्तमाल का रचनाकाल, निबंध, पृ० १२७ सम्मेलन पत्रिका, भाग ३५

भी प्रस्तुत करते गए होंगे। 'भक्तमाल' को नाभादास जी ने गोविन्द नामक भक्त को कंठस्थ करवा दिया था जिसका उल्लेख नाभा जी ने 'भक्तमाल' में किया भी है :

'भक्त रत्नमाला' सुघन गोविंद कंठ बिकास किया।
रुचिर सलिघन नील लील रुचि, सुमति सरित पति।
विविध भक्त अनुरक्त व्यक्त, बहु चरित चतुर अति।
लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अबिरुधि उचारन॥"[1]

इस छप्पय के बाद भी 'भक्तमाल' में अनेक भक्तों का उल्लेख मिलता है। सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि समय-समय पर इसमें रचयिता ने अन्य भक्तों का भी विवरण जोड़ दिया है। रचना-क्रम में बड़ी गड़बड़ी दृष्टिगत होती है। अनेक बाद की घटनाएँ पहले छप्पयों में वर्णित है और युग की प्रारम्भिक घटनाएँ जिन्हें प्रारम्भ मे ही होना चाहिए था, अन्त मे वर्णित है। जैसे कबीरदास का आविर्भाव तुलसीदास जी से पूर्व हुआ था, किन्तु तुलसी का विवरण 'भक्तमाल' में कबीर से पहले उपलब्ध होता है।

'भक्तमाल' में लगभग २०० भक्तों के चरित्रों के विविध पक्षों को प्रस्तुत किया गया है। इस भक्तों में रामोपासक, कृष्णोपासक तथा संत-कवियों के विवरण दिये गए है। भक्तों की जीवनी के साथ-साथ नाभादास जी ने व्यक्तित्व-दर्शन का भी संक्षिप्त उल्लेख किया है। उन्होंने भक्तों को भक्त और भक्त-कवि, रूप में चित्रित किया है।

वर्ण्य-विषय

भक्तमाल के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डालते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा है कि, "इन्होंने भक्तमाल मे २०० भक्तों का चमत्कार बोधक चरित्र छप्पय छद मे लिखा है। उपास्य के नाम, रूप, लीला, और धाम सबका इन्होंने वर्णन किया है।"[2] भक्तमाल का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है। मंगलाचरण की प्रथा हमारे साहित्य में बड़ी प्राचीन है। कवि अपने मनोरथ में सफलता प्राप्त करने के लिए भगवान से प्रार्थना, मंगलाचरण के रूप में ही करता है। संस्कृत-साहित्य में भी ग्रंथ आरम्भ करने के पूर्व मंगलाचरण का विधान है। मंगलाचरण मंगल की कामना का ही द्योतक है। कवि 'मंगलाचरण'

---

१. प्रियादास-कृत भक्तमाल टीका
२. वाङ्मय विमर्श, पृ० २७२-२७३

के माध्यम से भगवान के प्रति अपनी भक्ति-भावना, अपने हृदय की श्रद्धा आदि का प्रदर्शन करता है। अपने कल्याण की कामना के साथ-साथ, वह पाठक तथा श्रोता के कल्याण के लिए भी भगवान की स्तुति करता है। 'मंगलाचरण' के प्रमुख भेद निम्नलिखित हैं :

(१) नमस्कारात्मक, (२) आशीर्वादात्मक[१]।

सर्वप्रथम 'मंगलाचरण' के रूप में कवि अपने आराध्य की स्तुति अवश्य करता है।

मंगलाचरण की परम्परा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी तक पहुँचती है। श्रृंगार रस में पूर्णतया 'बूढ़े' हुए कवि बिहारी भी अपने आराध्य की स्तुति करना न भूले और उन्होंने अपनी 'भव-बाधा' को समाप्त कराने की प्रार्थना भगवान कृष्ण से की। विद्यापति भी जीवन भर श्रृंगार की उपासना करते-करते थक-से गए थे। अंत में भगवान शेष जीवन के लिए प्रार्थना करने लगे कि अब वे उन्हें अपने भक्ति अथवा अपनी कृपा प्रदान करें। राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध कवि प्रिथीराज ने भी 'वेलिक्रिसन रुक्मिणी री' के आरम्भ में 'भक्तमाल' के मंगलाचरण से मिलता-जुलता 'मंगलाचरण' लिखा है। कवि ने कहा है कि परमेश्वर, सरस्वती और गुरु को प्रणाम करना चाहिए, क्योंकि ये हमारे सार-तत्व हैं। भगवान कृष्ण के मंगलरूप का भी गुणानुवाद करना चाहिए :

"परमेसर प्रणवि प्रणवि सरसति पुणि सतगुरु प्रणवि त्रिण्हे ततसार।
मंगलरूप गाइजै माहव चार सु ए ही मंगल चार ॥"[२]

नाभादास ने ग्रंथ के प्रारम्भ में कहा है :

"भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किये, नाशै विघ्न अनेक ॥
मंगल आदि विचारि रह, वस्तु न और अनूप।
हरिजन को यश गावते, हरिजन मंगल रूप।"[३]

मंगलाचरण के अनन्तर कवि ने इस तथ्य का भी संकेत किया है कि गुरु से आज्ञा पाकर कवि ने भक्तों का गुणगान करने का निश्चय किया है। साहित्य शास्त्र में एक मान्यता यह है कि वर्ण्य-वस्तु का निर्देश या तो मंगलाचरण में

---

१. आर्शीनमस्क्रन्या वस्तुनिर्देशोवापि
२. पृथीराज : बेलिक्रिसन रुकमिणी री, पृ० १
३. भक्तमाल, पृ० ४३

में ही हो अथवा मंगलाचरण के समाप्त होते ही ऐसा संकेत मिले कि कवि किस वस्तु का वर्णन करने जा रहा है। नाभादास ने मंगलाचरण के साथ ही इसके (वस्तु-निर्देश) संकेत दिये हैं। इसके पश्चात कवि अनेक देवताओं की स्तुति करता है। 'भक्तमाल' मे कवि ने जिन चरित्रों का उल्लेख किया है, वे निम्न-लिखित चार प्रमुख भागों मे विभाजित हैं :

(१) सत्ययुग के चरित्र
(२) द्वापर के चरित्र
(३) त्रेता के चरित्र
(४) कलियुग के चरित्र

एक अन्य दृष्टिकोण से भी इन चरित्रो को विभाजित किया जा सकता है :

(क) दैवी चरित्र
(ख) मानवी चरित्र

सतयुग, त्रेता और द्वापर के वर्णित चरित्रों को हम देवताओं की श्रेणी में रख सकते है, यद्यपि नाभाजी ने स्वयं चरित्रों के वर्णन में ऐसी कोई विभाजन की रेखाएँ नही खीची। कलियुग के भक्तो का भी वर्णन कवि ने वड़े ही श्रद्धा-पूर्वक किया है।

'मंगलाचरण' के पश्चात् कवि देवताओं की वंदना करता है। एक एक छप्पय में कही कही अनेक देवताओं की वंदना की गयी है और कही कहीं एक ही देवता की वदना मे अनेक छप्पय लिखे गए है। कवि चौवीस अवतारों के चरणों की वदना करता हुआ कहता है :

"जय जय मीन, वराह कमठ नरहरि वलि वावन।
परसुराम रघुवीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलंक्की व्यास पृथू हरिहंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव धुरुव वरदैन धन्वंतर॥
वद्रीपति दत्त कपिलदेव सनकादि करुना करौ।
चौवीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥

तदनन्तर कवि ने भगवान के (राम) उन पद चिह्नों की प्रार्थना की ह जिनके स्मरण से अनेक पापों का विनाश होता है। भगवान के चरणों मे निम्न-लिखित चिह्न हैं जिनकी कवि ने वंदना की है :

(१) अम्वुज, (२) अंकुश, (३) यव, (४) ध्वज, (५) चक्र, (६) ऊर्ध्व

रेखा, (७) स्वस्तिक, (८) अष्टकोण, (९) पवि, (१०) विन्दु, (११) त्रिकोण, (१२) धनु, (१३) अंकुश, (१४) मत्स्य, (१५) शंख, (१६) चन्द्रार्द्ध, (१७) गोष्पद, (१८) घट, (१९) ध्वज, (२०) कुलिश, (२१) अंकुश, (२२) कमल ।

आगे चलकर कवि देवताओं की वंदना प्रारम्भ करता है और निम्नलिखित ३ देवताओं को उसने प्रधानता दी है :—

(१) श्री ब्रह्माजी, (२) श्री नारद जी, (३) श्री शंकर जी ।

इसके पश्चात् इसी छप्पय मे बारह महा भक्त राजों का भी उल्लेख किया गया है :

१. श्री सनक जी
२. श्री सनन्दन
३. श्री सनातन
४. श्री सनत्कुमार
५. श्री कपिलदेव जी
६. मनु जी
७. प्रह्लाद जी
८. जनक जी
९. श्री भीष्माचार्य
१०. श्री वलि जी
११. सुकदेव जी[1]

निम्नलिखित सूची उन देवताओं, भक्तों और मुनियों की दी जा रही है जो सत्ययुग, त्रेता और द्वापर मे अवतीर्ण हुए थे । इन समस्त चरित्रो की वंदना कवि ने श्रद्धापूर्वक की है ।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर के चरित्र

(१) ब्रह्माजी : मुखदु:खादि प्रारब्ध रेखाओ के तथा सृष्टि के कर्त्ता ।
(२) नारदजी : भगवान राम के अनन्य भक्त ।
(३) शिवजी : सृष्टि के सहारक देवता ।
(४) सनकादि : ब्रह्माजी के पुत्र ।

---

१. विधि[1] नारद[2] संकर[3] सनकादिक[4] कपिलदेव[5] मनुभूप[6] ।
नरहरिदास[7] जनक[8] भीषम[9] वलि[10] सुकमुनि[11] धर्म स्वरूप ।।
अंतरंग अनुचर हरिजू के जो इन कौ जस गावे ।
आदि अंत लौ मंगल तिन को श्रोता वक्ता पावै ।।
अजामेल परसंग यह निरनै परम धर्म[12] को जान ।
इनकी कृपा और पुनि समझै द्वादस भक्त प्रधान ।।"
नाभादास, टीकाकर्त्ता प्रियादास भक्तमाल, पृ० ६५

(५) कपिलदेव : तत्वज्ञाता ।

(६) मनुजी : आदि पुरुष ।

(७) श्री प्रह्लादजी : भगवान के अनन्य भक्त, दास्यनिष्ठा में अग्रगण्य ।

(८) जनकजी : ऋषियों के अधीश्वर, सीता जी के पिता ।

(९) भीष्मजी : आठ वसुओं में से एक वसु के अवतार महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा ।

(१०) श्री बलिजी : धर्म में सतत संलग्न रहने वाले ।

(११) शुकदेवजी : व्यास महराज के पुत्र, भगवद्भक्ति में लीन रहने वाले।

(१२) धर्मराज ।

(१३) अजामेल जी ।

(१४) श्री लक्ष्मी जी : भगवान विष्णु की पत्नी ।

(१५) श्री पार्षद जी : भक्तों के रक्षक १६ पार्षद में से प्रमुख एक हैं ।

(१६) गरुड़ जी : भगवान का वाहन ।

(१७) श्री हनुमान जी : भगवान राम के दूत, पवन-सुत, अलौकिक कर्मों के करने वाले ।

(१८) श्री जाम्ववान जी : श्री ब्रह्मा जी के अवतार राम तथा सुग्रीव के मंत्री ।

(१९) श्री सुग्रीव जी : सूर्य के पुत्र, भगवान राम के अनन्य मित्र, कपियों के राजा ।

(२०) श्री विभीषण जी : भगवान राम के अनन्य भक्त, लंकेश के भाई ।

(२१) सवरी : भिल्ल जाति में उत्पन्न राम की अनन्य भक्ता ।

(२२) जटायु : पक्षियों का राजा, राम का भक्त, सीता की रक्षार्थ प्राण त्यागे थे ।

(२३) श्री अम्वरीप जी और महारानी : भगवान के भक्त थे, साधुओं का आदर करते थे । विना अपराध दुर्वासा ऋषि के कोपभाजन वने ।

(२४) विदुर जी : भगवान कृष्ण के भक्त ।

(२५) विदुरानी : भगवान कृष्ण की अनन्य भक्त, महाभारत के युद्ध के पूर्व एक वार कृष्ण विदुर जी के घर गये, विदुरानी स्नान कर रही थीं। कृष्ण का स्वर सुन भावविह्वल वह नग्नावस्था में ही कृष्ण से मिलीं ।

(२६) सुदामा : कृष्ण के सखा, जाति के ब्राह्मण । जन्मजात दरिद्र ।

(२७) चन्द्रहास : केरल देश के राजा का पुत्र, जिसने नारद कृपा से भक्ति प्राप्त की।

(२८) मैत्रेय ऋषि : भगवान कृष्ण के भक्त थे।

(२९) अक्रूर जी

(३०) चित्रकेतु : ब्रह्मज्ञानी, पार्वती के श्राप से 'वृत्रासुर' हुआ।

(३१) उद्धव : कृष्ण के सखा, ब्रह्मज्ञानी।

(३२) ध्रुव जी : भगवान का अनन्य भक्त।

(३३) अर्जुन : महाभारत के युद्ध के प्रमुख योद्धा, कृष्ण के अनन्य भक्त।

(३४) युधिष्ठिर : पांडवों में सबसे बड़े भाई, सत्य और धर्म के साक्षात् अवतार थे।

(३५) ग्राह : भगवान कृष्ण का भक्त।

(३६) कुन्ती जी : कृष्ण की भक्ति में तन, मन, धन सभी कुछ अर्पण कर दिया था।

(३७) द्रौपदी : परम सती, पांडवों की पत्नी, भगवान की अनन्य भक्त जिसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि चीरहरण के समय भगवान ने मदद की।

(३८) श्रुतिदेव जी : भगवान कृष्ण श्रुतिदेव के घर एक दिन पधारे दर्शन-मात्र से भगवान के अनन्य भक्त बन गए।

(३९) योगीश्वर

(४०) राजा अंग जी : विठुर निवासी, धर्मात्मा थे।

(४१) राजा मुचुकुन्द जी : अयोध्या के राजा, देवताओं के युद्ध में बड़ी सहायता की और थक कर एक पर्वत की कंदरा में विश्राम कर रहे थे। श्री कृष्ण भगवान 'कालयवन' नामक दैत्य का पीछा करने से भागते हुए उसी गुफा में आ छिपे और अपना पीताम्बर मुचुकुन्द जी के शरीर पर ओढ़ा दिया। कालयवन इन्हीं को कृष्ण समझ कर गालियाँ देने लगा। मुचुकुन्द जी के नेत्र खोलते ही कालयवन मृत्यु को प्राप्त हुआ।

(४२) प्रियव्रत जी : मनु के पुत्र, भक्त थे।

(४३) राजा पृथु जी : भगवत् भक्ति में तल्लीन रहते थे।

(४४) परीक्षित : हस्तिनापुर के राजा, अर्जुन के पोता थे।

(४५) शेष जी : भगवान की क्षीर सागर मे शयन के निमित्त शय्या बने थे।

(४६) सूत जी : पुराणादि-के कीर्तनकार।

(४७) शौनक : पुराणादि के अट्ठासी सहस्त्र श्रोताओं मे प्रमुख थे।

(४८) प्रचेता : नारद के उपदेश से भगवान के दर्शन इन्हें हुए थे।

(४९) श्री सतरूपा जी (कौशल्या जी) : सुरपुर मे बसने के पश्चात् सतरूपा जी कौशल्या जी के रूप मे अयोध्या में माता (राम की) के रूप मे प्रतिष्ठित हुई।

(५०) प्रसूती जी : मनु जी की कन्या, दक्ष की धर्म-पत्नी, भक्ति परायणा।

(५१) श्री आकूती जी : प्रियव्रत जी की भगिनी थी।

(५२) देवहूती जी : स्वय कपिल जी की माता, देवी द्वारा उपदेश प्राप्त किया था।

(५३) सुनीति जी : उत्तानपाद की धर्मपत्नी, भक्त ध्रुव की माता थी।

(५४) मन्दालसा : भक्त हृदय और पतिपरायणा थी।

(५५) सती जी (उमा जी) : दक्ष सुता, शंकर की अर्धांगिनी।

(५६) यज्ञ पत्नी (मथुरानी चौबाइन) : कृष्ण तथा उनके सखाओ की भक्ति मे सलग्न सभी मर्यादाओ का उल्लघन कर गई थी।

(५७) गोपिकावृन्द : कृष्ण के प्रेम मे अनुरंजित गोपिकाएँ।
कवि नाभादास इन समस्त भक्तो के चरणों की धूल मे तथा रगीली भक्ति मे रम जाना चाहते है।

(५८) महर्षि वाल्मीकि जी : आदि कवि, भगवान राम ने स्वयं आपके आश्रम मे जाकर दर्शन दिये थे। राम की लीलाओं का महर्षि ने वडी ही श्रद्धापूर्वक गान किया था।

(५९) प्राचीन वर्हिजी : इनके कई सहस्त्र पुत्र थे। नारद की कृपा से भगवान की भक्ति प्राप्त कर गोलोकवासी हुए।

(६०) सत्यव्रत जी : श्री भगवत् की 'मीन' अवतार इन्ही की अजली से प्रकट हुए थे।

(६१) राजानीलध्वज : कृष्ण का भक्त, इनके पुत्र ने अर्जुन के अश्वमेघ यज्ञ के घोडे को पकड़ लिया था।

(६२) रहूगण जी : भक्त राजा थे। 'जडभरत' और 'रहूगण' का सवाद श्रीमद्-भागवत के पाँचवे स्कध मे वर्णित है।

(६३) श्री सगर जी : राजा सगर को उनकी सौतेली माँ ने गर्भ में ही विष दे दिया था, किन्तु भगवान की कृपा से बच गए। भगवान राम के वंश के प्रथम पुरुष थे।

(६४) भगीरथ : राम के वंशज।

(६५) भरत जी : पिता का नाम ऋषम देव था। समस्त भारत के सम्राट थे।

(६६) दधीचि जी : दानशिरोमणि दधीचि ने असुर के वध के लिए अपनी पीठ की हड्डी दे डाली थी। भगवान का बड़ा भक्त था।

(६७) रघु जी : अयोध्या के प्रतापी महाराज थे।

(६८) भारद्वाज जी : भगवान राम के भक्त। इन्हीं के अतिथि भरत जी हुए थे। 'प्रयाग' में भारद्वाज का प्रसिद्ध आश्रम बना है।

(६९) शुकदेव जी : इसके पूर्व भी शुकदेव जी का विवरण दिया जा चुका है।

(७०) वशिष्ठ जी : 'बड़ वशिष्ठ सम को जग माँहीं', ब्रह्माजी के पुत्र थे।

(७१) अत्रि अनसूया : अत्रि ब्रह्माजी के पुत्र थे। अनसूया अपनी पत्नी सहित चित्रकूट में तप किया था।

(७२) विश्वामित्र : विश्वामित्र की तपस्या तीनों लोकों में विख्यात है।

(७३) दुर्वासा : अत्रि के पुत्र, शाप देने में प्रवीण थे।

(७४) याज्ञवल्क्य जी : बड़े प्रतापी मुनि थे। सूर्य से विद्या पढ़ी थी।

(७५) जाबालिक : अवधेश के मंत्रियों में से थे।

इन समस्त मुनियों, भक्तों की वंदना करने के पश्चात् नाभादास ने १८ महा-पुराणों की स्तुति की है तथा १८ स्मृतियाँ जिन महानुभावों ने कही थी, उनके चरण-कमलों की स्तुति की गई है। तदुपरान्त 'राम के मंत्रियों' में कवि ने एक एक की वंदना की है। उनका क्रम इस प्रकार है :

(७६) श्री धृष्टि जी।
(७७) श्री जयन्त जी।
(७८) श्री विजय जी।
(७९) श्री राष्ट्रवर्धन।
(८०) श्री सुराष्ट्र जी।
(८१) श्री अशोक जी।
(८२) श्री धर्मपालक जी।
(८३) श्री सुमंत्र जी।

कवि के कथनानुसार इन मंत्रियों का स्मरण करने मात्र से भगवान राम प्रसन्न हो जाते हैं। इसके पश्चात् कवि कुछ राम के सखाओं के नामों का उल्लेख करता है। राम के प्रमुख सखा ये है :

(८४) श्री सुग्रीव जी। (८५) हनूमान जी। (८६) अंगद आदि।

इन सखाओं से कवि कृपा की भिक्षा की याचना करता है। आगे चल कर कवि कृष्ण के सखाओं, गोपिकाओं आदि का विवरण प्रस्तुत करता है। तत्पश्चात् सप्त द्वीपों के भक्तों की प्रशंसा करता है, जम्बू द्वीप के भक्तों की स्तुति करता है। हरि-मंदिर के द्वारपाल अष्ट-कुल-नागों की वंदना करना भी कवि नहीं भूलता। अष्टकुल-नागों के प्रशंसात्मक वर्णन से ही कवि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि के भक्तों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है। इसी स्थल से कलियुग के भक्तों के चरित्र प्रारम्भ होते हैं। 'भक्तमाल' के पूर्वार्ध मे जो चरित्र वर्णित हैं, उनकी स्तुति और वंदना कवि ने बड़ी ही श्रद्धापूर्वक की है। यह संक्षेप में उन चरित्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जो सत्ययुग, त्रेता, द्वापर मे अवतरित हुए थे। लेखक ने केवल प्रमुख चरित्रो का ही विवरण दिया है। समस्त चरित्रों की संख्या अधिक है, लगभग १७५ के होगी। अतः उन सभी चरित्रों का विवरण न देकर केवल कुछ प्रमुख व्यक्तित्वों का विवरण देकर ही संतोष करना पड़ता है।

कलियुग के चरित्र

इसके पूर्व भी इस बात का संकेत किया जा चुका है कि 'भक्तमाल' मे वर्णित कलियुग के भक्तो मे किसी प्रकार का क्रम नही पाया जाता। क्रमबद्धता न मिलने का कारण यह हो सकता है कि भक्तमाल सबसे पहले गोविन्द 'भक्तमाली' द्वारा कंठस्थ की गई थी, और लोकप्रियता बढ़ने पर इसे लिपिबद्ध किया गया होगा। ऐसी स्थिति में गोविन्द द्वारा हेर-फेर हो जाना भी सम्भव है। कलियुग के प्रारम्भ के चरित्र अन्त मे और कलियुग के अन्त में आविर्भूत होने वाले चरित्र ग्रंथ के प्रारम्भ मे दृष्टिगत होते हैं। इस क्रम की विच्छिन्नता के लिए स्वयं नाभादास भी क्षमा याचना करते हैं :

"श्रीमूर्ति सब वैष्णव लघु, दीरघ गुणनि अगाध।
आगे पीछे बरन ते, जिनि मनौ अपराध॥"

हो सकता है कि नाभादास भी क्रमबद्धता के लिए अधिक सजग न रहे हों। इस प्रकार 'भक्तमाल' एक ऐसा ग्रंथ है जो समय समय पर पुष्ट होता रहा।

कलियुग के सभी चरित्र मानवीय है। उन्हें देवताओं की कोटि में नहीं रखा जा सकता। किन्तु यह भक्त अपनी भक्ति और साधना से उस मानवता के संकीर्ण घेरे का अतिक्रमण कर चुके थे। यही कारण है कि कवि ने यत्र-तत्र भक्तों के चरित्रों में अलौकिकता का पुट दे दिया। यथार्थ में इन भक्तों के लिए कुछ भी कठिन अथवा असम्भव नहीं है, कारण कि उनकी सहायता के लिए भगवान स्वयं

तत्पर रहा करते है । पीपा, धना आदि संतो के चरित्रो मे अलौकिकता के दर्शन होते है । पीपा ने नरभक्षक वाघ को दीक्षा दी थी ।[१] धना जी के क्षेत्र मे विना वोये हुए ही फसल उत्पन्न हुई थी ।[२] वास्तव मे यह भक्त भगवान के दूसरे रूप हुआ करते है ।

कलियुग के भक्तो मे, रामोपासक, कृष्णोपासक और निर्गुण-पथी, सभी कोटि के भक्त 'भक्तमाल' मे वर्णित है । रामोपासक कवियो मे नाभादास ने 'तुलसी', कृष्णोपासक मे सूर, मीरा और निर्गुणियो मे कबीर के चरित्र पर अधिक दृष्टि रखी है । कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास ने इन प्रमुख कवियो का वर्णन बड़ी ही श्रद्धा और भक्ति के साथ किया है।

'श्रद्धा' और 'भक्ति' के स्थूल रूप से आधार पर विशेष माने जा सकते है । श्रद्धा का पात्र सामान्यत. वही हो सकता है जिसमे अनेक अनुकरणीय गुणों का समन्वित रूप आकर केन्द्रित हो गया हो । 'श्रद्धा तभी जन्म लेती है, जब हम किसी विशेप व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी ओर आकृष्ट होते है । 'श्रद्धा' के अकुरित होने के लिए वीज वोने की आवश्यकता होती है, किन्तु भक्ति के वीज हृदय मे विद्यमान रहते है, अवकाश पाकर वे अकुरित हो जाते है । 'श्रद्धा' वौद्धिक भित्ति पर आधारित है, भक्ति का सम्बध हृदय से है, वह हमारे सस्कारो से सम्बद्ध है ।

'भक्तो' के चरित्राकन मे कवि नाभादास के हृदय की श्रद्धा और भक्ति सर्वत्र दृष्टिगत होती है । नाभादास की दृष्टि मे सभी भक्त पूज्य और सम्मान के पात्र थे । भेद-भाव नामक कोई भी वस्तु नाभादास को छू तक न गई थी। कवीर, धना, तुलसी, सूर, आदि सभी भक्तो के चरित्र को कवि ने एक ही साँचे मे ढाला है । जहाँ एक ओर नाभादास ने धना के 'भजन' को 'धन्य' कहा, वहाँ दूसरी ओर सूरदास के 'कवित्त' की भी प्रशसा की । अपने गुरु अग्रदास की प्रशसा करता हुआ कवि कहता है कि, "अग्रदास ने हरि के भजन के अतिरिक्त व्यर्थ मे समय नही नष्ट किया ।"[3] कवि केशव भट्ट की प्रशसा करता हुआ उन्हे पापो के नाश करने वाला तक घोपित किया है । केशव भट्ट को मनुष्यो

१. "पीपा प्रताप जग वासना, नाहर कौ उपदेश दियौ ।..." (भक्तमाल)

२. धन्य धना के भजन को, बिनहि वीज अंकुर भयौ ।" (भक्तमाल)

३. "(श्री) अग्रदास हरिभजन विन काल वृथा नहि वित्तयो...."
(भक्तमाल)

का मुकुट-मणि कह कर कवि ने अपने हृदय की श्रद्धा को साकार रूप प्रदान किया है :

> **"केशौ भट" नर मुकुटमणि, निज की प्रभुता बिस्तरी ॥**
> **"काश्मीरि" की छाप, पाप तापनि जग मंडन ।"[1]**

चरित्रों के वर्णन मे नाभादास जी का एकांगी दृष्टिकोण सम्पूर्ण 'भक्तमाल' में कुहासे की भाँति छाया हुआ है । कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास जी भक्तों की प्रशंसा तक ही अपने को सीमित रख सके जिसका परिणाम यह हुआ कि, "वृत्तान्त अत्यन्त अपूर्ण और भक्तों के केवल महिमा सूचक"[2] रह गए ।

कवि ने भक्त चरित्रों के अन्य पक्षों को न लेकर केवल उन्ही पक्षों का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया है जो भक्त को जनता के मध्य स्थायित्व प्राप्त कराने में सहायक हुए हैं । कुछ भक्तो के चरित्रों को प्रभावशाली वनाने के लिए कवि ने अनेक प्रकार की यौगिक प्रक्रियाओं का भी उल्लेख किया है । कृष्णदास पयोहारी जी के चरित्र मे यौगिक प्रक्रियाओं का समावेश कवि ने किया है ।

कवि भाव का अनुगामी होता है, तथ्य को यथातथ्य प्रस्तुत करने वाला इतिहासकार नहीं होता । नाभादास कवि थे, कवि होने के नाते उन्हें वस्तु-वर्णन मे कल्पना का सहारा लेना पड़ता है । यही कारण है कि कवि नाभादास ने भक्तों का यथातथ्य वर्णन न करके, अतिरंजना का सहारा लिया है । अतिरंजना से पूर्ण अलौकिकता की छाप लिये हुए ये भक्त चरित्र सदैव मानव को भक्ति-मार्ग पर चलने के लिए अनुप्राणित करते रहेंगे ।

सर्वप्रथम नाभादास ने चार प्रमुख सम्प्रदाय के प्रवर्तकों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार है :

> **"रमा पधति रामानुजा विष्नुस्वामी त्रिपुरारि ।**
> **निंवादित्य सनकादिका, मधुकर गुरु मुख चारि ॥"[3]**

(१) **श्री निंवादित्य :** निम्वार्क सम्प्रदाय वैष्णवों का प्रमुख सम्प्रदाय है । इसके प्रवर्तक निम्वार्क स्वामी थे । निम्वार्क स्वामी भक्ति और ज्ञान के भंडार थे । निम्वार्क स्वामी दक्षिण मे 'गोदावरी गंगा' के तट मुगेर नामक ग्राम के

---

१. नाभादास : भक्तमाल
२. डा० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १०९
३. नाभादास-कृत भक्तमाल, पृ० ५ (कल्याण भक्त चरितांक में प्रकाशित)

उपर्युक्त छप्पय में कवि ने तुलसी को वाल्मीकि का अवतार माना है। तुलसी का 'मानस' इस कलियुग के अज्ञानरूपी भवसागर से पार होने के लिए ज्ञान रूपी नौका के समान है।

(६) **सूरदास :** वैसे तो कवि ने भक्तमाल में चार 'सूरों' का विवरण दिया है, किन्तु इस स्थल पर भक्तप्रवर कृष्णोपासक उन्हीं सूर का विवरण दिया जा रहा है जिनके प्रकाश से आज साहित्य का प्रांगण प्रकाशमान है। 'सूर' के विषय में 'भक्तमाल' में यह छप्पय दिया हुआ है :

"सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहि सिर चालन करै ॥
उक्ति, ओज अनुप्रास वरन अस्थिति अति भारी ॥
वचन प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्भुत तुक धारी ॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि, हृदय हरि लीला भासी ।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी ॥
विमल बुद्धि गुन और की, जो यह गुन श्रवननि धरै ।
'सूर' कवित सुनि कौन कवि, जो नहि सिर चालन करै ॥"

वास्तव में सभी सूर के काव्य का आस्वादन कर रसमग्न होकर प्रशंसा से शीश को हिलाने लगते हैं। सूर के काव्य में अनेक गुण है। कविता के तुकों में अद्भुत अर्थ भरा है।

अग्रदेव जी

अपने गुरु अग्रदास के विषय में नाभादास ने कहा है कि अग्रदास ने भगवान के भजन के विना किसी भी कार्य में व्यर्थ के लिए समय नही व्यतीत किया। अग्रदास की जिह्वा से 'श्री सीताराम' निर्मल नाम इस प्रकार से सप्रेम उच्चारित हुआ करता था कि जैसे कोई अलौकिक आनन्द का मेघ मधुर-मधुर शब्द करके बरसता है। नाभादास द्वारा 'भक्तमाल' मे प्रस्तुत किया गया छप्पय यहाँ उदाहरण स्वरूप रखा जा रहा है :

"(श्री) अग्रदास हरिभजन विन, काल वृथा नहि वित्तयो ॥
सदाचार ज्यों संत प्राप्त जैसे करि आये ।
सेवा सुमिरण सावधान, चरण राघव चित लाये ॥
प्रसिध बाग सो प्रीति सुहथ कृत करत निरन्तर ।
रसना निर्मल नाम मनहुँ वर्षत धारा धर ॥

(श्री) कृष्णदास कृपाकरि भक्ति, दत्त, मन वच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन काल वृथा नहि वित्तयो ॥"[१]

स्वामी श्री शंकराचार्य

शंकराचार्य के विषय में एक छप्पय दिया गया है जिसमें उनके चारीत्रिक गुणों का उल्लेख किया गया है। नाभादास ने शंकराचार्य को "कराल कलियुग में अधर्म और अधर्मियों से धर्म को अर्थात् वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म तथा भागवत्-धर्म को पालन-रक्षण करने"[२] वाला सुभट उत्पन्न व्यक्तित्व माना है। शंकराचार्य ने अनेक विधर्मियों को धर्म मे प्रवृत्त किया। शंकराचार्य जी दक्षिण में उत्पन्न हुए थे। वेदों के ज्ञाता थे तथा भगवान शंकर की शंकराचार्य पर विशेष कृपा थी :

"कलियुग धर्मपालक प्रगट आचारज शंकर सुभट ॥
उतश्रंखल अज्ञान जिते अनईश्वरवादी।
बुद्ध कुतर्की जैन और पाखंडहि आदी ॥
विमुखनि को दियो दंड, ऐंचि सन्मार्ग आने।
सदाचार की सींव विश्व कीरतिहि बखाने ॥
ईश्वरांश अवतार महि, मरजादा माँड़ी अघट।
कलियुग धर्मपालक आचारज शंकर सुभट ॥"[३]

उपर्युक्त छप्पय से एक बात और स्पष्ट होती है कि जितने भी अनीश्वरवादी, जैन, बुद्ध, धर्म विमुख थे, उन्हे यथा योग्य दंड देकर पुनः वैदिक धर्म के सन्मार्ग पर शंकराचार्य ले आये थे।

पयहारी श्री कृष्णदास

कृष्णदास जी ने अन्न को त्याग कर दूध पीना ही प्रारम्भ किया था जिसको जो कुछ दे देते थे उससे कभी कुछ लेते नही थे। कृष्णदास जी राजस्थान के दातिमा (दाधीच्य) ब्राह्मण थे।[४] कृष्णदास जी ने रामानन्द सम्प्रदाय

---

१. प्रियादास कृत भक्तमाल टीका, पृ० ३१८
२. प्रियादास : टीका, पृ० ३२२-२३
३. प्रियादास : भक्तमाल टीका, पृ० ३२३
४. "निर्वेद (क) अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो।
जाके सिर कर धर्यो, तासु कर तर नहि अड्ड्यो।
अर्प्यो पद निर्वान (ख) सोक निर्भय करि छड्ड्यो ॥

की पहली गद्दी राजस्थान में योगियों को चमत्कारों द्वारा पराजित करके स्थापित की थी। "पयोहारी जी ने आग की धूनी को अपनी लँगोटी मे उठा लिया था, योगियों के महंत को गधा बना दिया था और उनके प्रभाव से योगियों की मुद्राएँ अपने आप निकल कर पयोहारी जी के समक्ष एकत्र हो गई थी।"[1]

नन्ददास जी

नन्ददास एक प्रसिद्ध और पहुँचे हुए भक्तकवि हो चुके हैं। नन्ददास अष्ट-छाप के कवियों मे अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रमुख कीर्तनकार थे। इनकी संगीत-लहरी के प्रवाह मे भक्तगण सहज मे ही तन्मय हो जाया करते थे। 'भक्तमाल' में जो छप्पय नन्ददास के विषय मे दिया गया है, उससे निम्नलिखित बाते ज्ञात होती है :

(१) रसिक जीव थे।

(२) भगवान की लीला के गान करने मे अति प्रवीण थे।

(३) रामपुर के निवासी थे, चन्द्रहास के अग्रज, सहृदय थे।

(४) उत्तम ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होने पर भी भगवत् भक्तों के चरण-रेणु के उपासक थे।[2]

तेज पुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता (ग)।
सेवत चरण सरोज राय राना भुविजेता (घ)॥
दाहिमा वंश दिनकर उदय, संत कमल हिय सुख दियो।
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो॥"

(प्रियादास कृत टीका 'भक्तमाल')

उपर्युक्त छप्पय मे प्रयुक्त कठिन शब्दो का अर्थ इस प्रकार है :

(क) निर्वेद : वैराग्य

(ख) निर्वान : मोक्ष

(ग) ऊरधरेता : जो अपने वीर्य को ब्रह्मांड में पहुंचा ले।

(घ) भुविजेता—पृथ्वी को जीतने वाला

१. (लेख-रामानन्द सम्प्रदाय में योग डा० बद्री नारायण श्रीवास्तव)
रसिक प्रकाश भक्तमाल

२. (श्री) नन्ददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रंगमगे॥
लीलापद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर।
सरस, उक्तिजुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्तपद रेनु उपासी॥

मीरांबाई

मीरां कृष्ण भक्ति में इतना तन्मय और उन्मत्त थीं कि उन्होंने लोक-लाज की अवहेलना की थी। मीरां के भक्ति-मार्ग में अनेक दुष्ट-जन रोड़ों के सदृश आये, किन्तु भगवान की भक्ति के सम्मुख उन्हें भी नतमस्तक हो जाना पड़ा। दुष्टों ने मृत्यु के लिए विष दिया जिसे मीरां ने अमृत की भाँति ही पी लिया और उनको कोई हानि न हुई।[1]

संत कवि

'भक्तमाल' में अनेक भक्तों और संतों के चरित्रों का विवरण दिया गया है। 'संत' और 'भक्त' में कोई विशेष अन्तर नहीं है, किन्तु फिर भी दोनों की अपनी पृथक्-पृथक् परम्पराएँ और साधना-पद्धतियाँ थीं। दोनों के मार्ग एक ही स्थान (केन्द्र-बिन्दु) पर मिलते थे। 'भक्त' और 'संत' दोनों परम तत्व (ब्रह्म) के जिज्ञासु थे। 'संत' शब्द आज सज्जन, 'साधु' आदि के लिए प्रयोग में आता है, किन्तु किसी समय 'संत' शब्द उन्हीं भक्तों के लिए प्रयुक्त होता था "जो विट्ठल अथवा वारकरी सम्प्रदाय के मुख्य प्रचारक थे। इनकी साधना का आधार मुख्यतया निर्गुण-भक्ति थी।....प्रो० रानाडे के मतानुसार कालान्तर में 'संत' शब्द रूढ़ि-सा बन गया और इस शब्द का प्रयोग केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए सीमित हो गया जो विट्ठल-सम्प्रदाय के अनुयायी थे।"[2]

वास्तव में 'संत' शब्द 'सत्' शब्द का बहुवचन-सा प्रतीत होता है। जिसे 'सत्यानुभूति' हुई हो उसे 'संत' शब्द द्वारा सम्बोधित किया जा सकता है।[3]

चंद्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मैं पगे।
(श्री) नन्ददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रँगमगे॥"

१. लोक लाज कुल-शृंखला तजि 'मीरां' गिरिधर भजी॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलिजुगहिं दिखायौ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ॥
दुष्टिनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ।
बार न बाँको भयौ, गरल अमृत ज्यौं पीयौ॥
भक्ति-निसान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी।
लोक-लाज-कुल-शृंखला तजि 'मीरां' गिरिधर भजी॥"

नाभादास : भक्तमाल

२. डा० त्रि० ना० दीक्षित : संत दर्शन, पृ० १

३. डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल : योग प्रवाह, पृ० १५८

X
'भक्तमाल' में नाभादास ने जहाँ अनेक भक्तों के चरित्रों को प्रस्तुत किया है, वहाँ कुछ प्रमुख संतो के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है ।[1] साम्प्रदायिक भेद-भाव से परे, नाभादास ने पूर्ण श्रद्धा के साथ संतों के चरित्रों को 'भक्तमाल' में स्थान दिया है । फिर भी कुछ संत अनजाने अथवा सैद्धान्तिक मतभेद के कारण 'भक्तमाल' मे स्थान न पा सके । 'भक्तमाल' यद्यपि संतमाला है, और संतों की परम्परा के अनुसार उसमे बाबा फ़रीद और दूसरे संतों का भी नाम होना चाहिए । यह कमी होते हुए भी यह तो हम देखते है कि संतों की महिमा वर्णन करने वाली इस पुस्तक में भारत के अनेक जातियों, कुलों और देशों मे पैदा हुए सतों के प्रति दिल खोलकर श्रद्धांजलि दी गयी है ।" X

'भक्तमाल' मे कुछ प्रमुख संतों का उल्लेख किया गया है । कबीर, रैदास, पीपा आदि के चरित्रों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । अब प्रत्येक का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :

रैदास

रैदास संतों की परम्परा रूपी शृंखला के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी थे । संतों को भौतिक और लौकिक सम्बंध अधिक प्रभावित न कर सके थे । अतः इन महात्माओं ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेद-भाव को सारहीन बतलाया । इसके अतिरिक्त ये संत कुलीन परिवारों के न होकर निम्न परिवारों के थे ।

जो छप्पय रैदास के विषय मे 'भक्तमाल' में उपलब्ध होता है उससे रैदास के विषय मे निम्नलिखित बाते ज्ञात होती है :

(क) विमल वाणी वाले सदाचार आदि मे मग्न

(ख) विवेकी

(ग) भगवान की भक्ति मे लीन रहने वाले

(घ) इसी कारण परमगति को प्राप्त कर भवजाल से छूटे ।

रूपकला जी ने रैदास के विषय मे लिखा है कि रैदास का जन्म चमार-कुल मे हुआ था । ऐसा कहा जाता है कि पूर्व जन्म मे रैदास ब्रह्मचारी रूप में रामानन्द जी के पास रहते थे । प्रतिदिन भिक्षा माँग कर लाते थे और उसी से भगवान का प्रसाद लगाया करते थे । एक दिन वर्षा अधिक हो रही थी । अतः वह ब्रह्मचारी समीप से ही एक वनिये के यहाँ से भिक्षा माँग लाया । भोग के समय महराज रामानन्द ने पूछा कि भिक्षा कहाँ से लाया है । ब्रह्मचारी ने

---

१. राहुल सांकृत्यायन : भूमिका—संत दर्शन ।

उत्तर दिया कि समीप के वनिये के यहाँ से लाया हूँ। वह बनिया एक चमार के साथ कारबार करता था। रामानन्द जी ने तत्काल श्राप दिया कि तू दूसरे जन्म में चमार के यहाँ जन्म ले।" इसी श्राप के कारण रैदास जी को पुनः चमार के घर में जन्म लेना पड़ा।[१]

कवीर

कवीर जैसे निराले व्यक्तित्व के विषय में 'भक्तमाल' में केवल एक छप्पय ही उपलव्ध होता है। कवि ने कवीर के विषय में निम्नलिखित वातों का उल्लेख किया है :

(क) कवीर ने वर्णाश्रम धर्म का विरोध किया।

(ख) भक्ति से विमुख जीवों (मनुष्यों) को भक्ति मार्ग पर लगाया।

(ग) कर्मकांड की घोर निन्दा की।

(घ) हिन्दू मुस्लिम, दोनों में ऐक्य स्थापना की चेष्टा की।[२]

कवीर ने निष्पक्ष भाव से भगवान के भजन का उपदेश किया था। वाह्याडम्बरों की आलोचना भी कवीर ने खूव की थी।

पीपा

पीपा जी के विषय में इस प्रकार का विवरण उपलव्ध होता है :

"पीपा प्रताप जग वासना नाहर कौं उपदेश दियौ ॥
प्रथम भवानी भक्त मुक्ति माँगन कौं धायो।
सत्य कह्यो तिहिं शक्ति, सुदृढ़ हरिशरण वतायो ॥

---

१. रूपकला : भक्तिसुधा स्वाद तिलक

२. (३२७) छप्पय (५१६)

"कवीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥
भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो।
जोग, जग्य, व्रत, दान, भजन विनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरक प्रमान, 'रमैनी, शवदी, साखी'।
पक्षपात नहिं वचन, सवही के हित की भाखी ॥
आरुढ़ दसा ह्वै जगत पर, मुख देखी नाहिन भनी।
कवीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥"

प्रियादास कृत भक्तमाल टीका

श्री रामानंद पद पाइ, भयौ अति भक्ति की सीवाँ ।
गुण असंख्य निर्मोल संत धरि राखत ग्रीवाँ ।।
परसि प्रणाली सरस भई, सकल विश्व मंगल कियौ ।
पीपा प्रताप जग बासना नाहर कों उपदेश दियो ।।"[1]

उपर्युक्त छप्पय के आधार पर पीपा के विषय में जिन प्रमुख तथ्यों की जानकारी होती है वे इस प्रकार हैं :

(१) पीपा का प्रताप जगत-विदित है और सुयश सर्वत्र व्याप्त है ।

(२) नर भक्षक व्याघ्र (बासना नाहर—व्याघ्र जिसको बहुत दूर से मनुष्य आदि की गंध ज्ञात हो जाती थी) को पीपा ने उपदेश दिया था ।

(३) भवानी (देवी) के उपासक थे, किन्तु देवी की आज्ञा से हरिभक्त हो गए और रामानन्द को गुरु बनाया ।

(४) रामानन्द के शिष्य होने के पश्चात् पीपा में अनेक गुणों का विकास हुआ और गुणों के समूह हो गए ।

(५) पीपा की भक्ति प्रणाली अत्यन्त सरल और मंगलमय थी ।

धना

धना जी उदार हृदय और पहुँचे हुए भक्त थे । भक्तों का आदर-सत्कार करना इन्होंने अपना परम और प्रथम कर्तव्य बना रखा था । एक बार धना के घर अनेक साधु आये और धना ने उन्हें वह समस्त अन्न खिला दिया जो खेत में बोने के लिए रखा था । माता, पिता के भय से खेत में बिना बीज पड़े ही दुवारा (लांगूल) हल चलवा दिया जिससे लोग यही समझें कि खेत बोया जा चुका है । भगवान की कृपा से बिना बोये हुए खेत में फसल उग आयी ।[2]

---

१. भक्तमाल, पृ० ४९४

२. "धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ।।
घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवायो ।
तात मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये ।।
आसपास कृषिकार खेत कर करत बड़ायो ।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पायो ।।
अचरज मानत जगत में कहुँ निपुज्यो, कहुँवै बयौ ।
धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ।।"
(भक्तमाल, पृ० ५२८)

चरित्र-वर्णन का आधार

(क) कथाएँ

(ख) प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का आधार

(ग) समसामयिक भक्तों के वर्णन में कवि का अपना स्वयं का ज्ञान

'भक्तमाल' में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के अनेक चरित्र वर्णित हैं। क्या कवि के पास इस प्रकार की कोई क्रमबद्ध सामग्री थी जिसके आधार पर उसने 'भक्तमाल' की रचना की ? यह प्रश्न अत्यन्त संदिग्ध है। प्रमाण के अभाव में इस प्रश्न के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

(क) **कथाएँ** : चरित्र वर्णन में कवि ने सम्भवतः जन-सामान्य में प्रचलित कथाओं का भी सहारा लिया है। कुछ चरित्र तो ऐसे हैं जो काल्पनिक हैं, अपना कोई अस्तित्व नहीं रखते, उनका भी विवरण 'भक्तमाल' में उपलब्ध होता है। ऐसे चरित्रों के वर्णन की आधार-शिला प्रचलित कथाओं पर ही आधारित है।

(ख) **प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का आधार** : 'भक्तमाल' का आद्योपांत अध्ययन करने के पश्चात् ऐसा आभास मिलता है कि कवि को प्राचीन साहित्य का अच्छा ज्ञान था। अनेक अवतारों का वर्णन इसी कोटि में आता है। कवि ने ऐसे चरित्रों का केवल नाम ही दिया है, उनके विषय में अधिक कुछ कहा नहीं।

(ग) **समसामयिक भक्तों के वर्णन में कवि का स्वयं का ज्ञान** : कवि ने लगभग २०० भक्तों के चरित्रों का वर्णन किया है जिन्हें कलियुग के भक्तों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसमें कुछ भक्त ऐसे है जो नाभादास के समकालीन थे और कुछ ऐसे भक्त हैं जो उनके पूर्व के हैं। शंकराचार्य, रामानुज आदि नाभादास के पूर्व आविर्भूत हुए थे। अष्टछाप के कवि तथा तुलसीदास नाभादास के समकालीन थे। इन भक्तों के विषय में कवि ने जो कुछ भी कहा है वह उसके स्वतः अनुभव का साक्षात् प्रमाण है। इन भक्तों को कवि ने जैसा देखा था, उसी रूप में प्रस्तुत किया।

कलियुग के भक्तों के वर्णन में क्रम नही मिलता। तुलसीदास के पश्चात् कबीर, दादू आदि का उल्लेख भक्तमाल में मिलता है। 'भक्तमाल' में क्रम के न मिलने का कारण भी स्पष्ट है। गोविन्द भक्तमाली को नाभादास ने भक्तों के चरित्रों को कंठस्थ करवा दिया था और सम्भवतः कलियुग के भक्तों के चरित्रों का संकलन नाभादास के समय में गोविन्द भक्तमाली ने किया था। कलियुग के भक्तों के वर्णन में क्रम न होने का यही प्रमुख कारण है।[1]

---

१. महावीर सिंह गहलोत : भवतमाल का रचना-काल (निबंध)

किसी भी देश अथवा समाज में महान् साहित्य तथा साहित्यकार के आविर्भाव के कुछ निश्चित कारण हुआ करते है। इनमे एक यदि युग-चेतना के प्रतिनिधित्व का दावा करता है तो दूसरा युग-चेतना का साक्षात् प्रतीक हुआ करता है। किसी विद्वान ने कहा है कि युग की महान् विभूतियाँ काल-प्रसूत हुआ करती हैं। काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती है।[1] साहित्यकार, समाज, देश, जनजीवन का नेता हुआ करता है। उसका साहित्य जनता के भावों का सच्चा, जीता-जागता स्वरूप होता है। नाभादास का 'भक्तमाल' एक संदेश, भावना विशेष को लेकर जनता के मध्य से चलकर, पुन. जनता के मध्य पहुँचता है। कारण कि भक्ति की धारा को प्रवाहित करने के वीज जनता के मध्य विद्यमान थे ही।

१. डा० श्याम सुन्दर दास : कवीरग्रंथावली की भूमिका, पृ० १

पंचम परिच्छेद

इतिहास की कसौटी पर भक्तमाल के चरित्रों का मूल्यांकन

अतीत को प्यार भरी दृष्टि से देखना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसके प्रति हमारे मन में मोह रहता है।

'भक्तमाल' में अनेक भक्तों का उल्लेख किया गया है जिसमें कवि ने भक्तों की सम्पूर्ण जीवनी न देकर उनका उल्लेख मात्र किया है। जिस प्रकार 'फ़ारसी 'तज्किरों' में वर्ग-विशेष के लोगों का विवरण संक्षेप में दिया जाता है, उसी प्रकार 'भक्तमाल' में कवि ने भक्त-मंडली के प्रमुख भक्तों के चरित्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। 'भक्तमाल' तथा वार्ता साहित्य, और 'तज्किरों का वर्ण्य-विषय एक नहीं है, किन्तु फिर भी वर्णन-शैली एक ही है। "हिन्दी में भक्तमाल, चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता आदि कुछ इने-गिने ग्रन्थों को छोड़कर इस प्रकार का (तज्किरों जैसा) साहित्य है ही नहीं और इसीलिए हमें अपने साहित्यिकों की स्फुट या ग्रन्थाकार कृतियाँ तो प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु उनके जीवन के सम्बंध में हम उनके ग्रन्थों से ही, जिसे अतः साक्ष्य कहते हैं, थोड़ा-बहुत कुछ ढूँढ़-ढाँढ कर निकाल ले तो निकाल ले, नहीं तो बिल्कुल अन्धकार में ही रह जाते हैं।"[1] वास्तव में 'भक्तमाल' को एक ऐसा प्रकाश स्तम्भ माना जा सकता है जिसने अनेक भक्तों और साहित्यकारों, कवियों के जीवन पर प्रकाश डाला है, जो उस समय तक अन्धकार के गर्त में पड़े थे।

हिन्दी साहित्य में इतिहास का प्रारम्भिक रूप इस वार्ता-साहित्य तथा 'भक्तमाल' में ही दिखायी पड़ता है, यद्यपि इन ग्रन्थों में वर्णित सामग्री को शुद्ध ऐतिहासिक

---

१. गोपाल चन्द्र सिंह : "फ़ारसी और उर्दू के तज्किरों एवं अन्य ग्रंथों में हिन्दी साहित्य के इतिहास की सामग्री" हिन्दी अनुशीलन (वर्ष ८, अंक ३), पृ० ११०

नहीं कहा जा सकता । कारण यह है कि न तो इन ग्रन्थों में किसी प्रकार की क्रमबद्धता है और न तिथियों का ठीक-ठीक उल्लेख ही । 'भक्तमाल' में केवल नाभादास ने भक्तों का उल्लेख मात्र कर दिया है और किसी भी प्रकार न तो उनके जीवन से सम्बद्ध किसी घटना विशेष का उल्लेख किया है और न उनका समय आदि ही दिया है । इन तथ्यों के अभाव में इसे (भक्तमाल) शुद्ध इतिहास मानना बड़ी भूल होगी ।

हिन्दी साहित्य में इतिहास की परम्परा का सूत्रपात 'सरोज'[1] से होता है । सबसे पहली बार साहित्यकारों के जीवन पर इस पुस्तक ने पर्याप्त प्रकाश डाला । इसके पश्चात् 'विनोद'[2] भी साहित्य के प्रांगण में आया जिसमें अनेक कवियों, और साहित्यकारों का जीवन-वृत्त, साहित्यिक सेवा, उनकी भाषा और साहित्य आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इस पुस्तक को सच्चा इतिहास कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं हो सकता । कारण कि जिस दृष्टिकोण को लेकर विद्वान लेखकों ने इसको जन्म दिया, वह ऐतिहासिक था । कहने का अभिप्राय यह है कि ग्रन्थ में क्रमबद्धता, तिथियों का आलोचनात्मक विवरण, भाषा और साहित्य का मूल्यांकन जिन मानदंडों को लेकर किया गया है, वे सर्वथा वैज्ञानिक और तर्कपूर्ण हैं और इतिहास के लिए ये सभी तत्व अनिवार्य हैं । ये तत्व 'भक्तमाल' में नहीं हैं ।

भक्तमाल के प्रमुख-चरित्र

देश-काल का सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधित्व मानव समाज में ही अभिव्यक्त होता है । साहित्यकार, समाज का कर्णधार हुआ करता है, अगुवा होता है । अतः समाज के अनुरूप ही वह अपने साहित्य के चित्रों में रंग भरता है । नाभादास के समय में देश में मुसलमानी शासक थे । हिन्दू जनता धर्म से दिन प्रतिदिन विमुख होती जा रही थी । आवश्यकता इस बात की थी कि कोई उसे ठीक मार्ग पर लगाता । 'काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं' ।[3] नाभादास जनता के सम्मुख एक विशेष उद्देश्य को लेकर अवतरित हुए और वह था जनता में भक्ति की लहर को पुनः प्रवाहित करना । यही कारण है कि उन्होंने अनेक भक्तों के चरित्रों का प्रशंसात्मक वर्णन कर उन्हें जनता के मध्य प्रतिष्ठित किया । नाभा-

---

१. शिवसिंह सेंगर : 'सरोज'

२. मिश्रबंधु विनोद

३. डा० श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली (भूमिका) पृ० १

दास ने समय के अनुरूप ही उन भक्तों के चरित्र को प्रस्तुत किया है। कवि ने ग्रन्थ में कहीं-कहीं ऐसे उल्लेख भी किये हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति के माध्यम से अनेक ऐसे अलौकिक कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं जो सामान्य मानव के लिए केवल कल्पना तक ही सीमित है। धना जी के सम्बंध में इसी प्रकार की घटना का कवि ने उल्लेख किया है कि बिना बोये ही धना की भक्ति के कारण उनके खेत में फसल उत्पन्न हुई थी।[1]

चरित्रों के दो प्रमुख भेद किये जा सकते हैं। एक देव वर्ग और दूसरा दानव वर्ग। "मनुष्य में सुन्दर असुन्दर, उदात्त हीन और उदात्त संकुचित सभी प्रकार की प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। तारतम्य के आधार पर प्रवृत्तियों के द्वन्द्व का प्रदर्शन किया जाता है।"[2] प्रवृत्तियों का संतुलन चरित्र के विकास और स्वाभाविकता में सहायक होता है। चरित्रों के वर्णन में मनोवैज्ञानिकता का सहारा लेना भी आवश्यक है। हृदय में उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण से चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और प्रभावशाली हो जाता है। नाभादास का चरित्रांकन आधुनिक युग के चरित्रांकन से बहुत कुछ भिन्न है। कारण यह है कि उन्होंने भक्तों, संतों के चरित्रों को 'भक्तमाल' में प्रस्तुत किया है जो सामान्य वर्ग से सर्वथा भिन्न हुआ करते हैं। सामान्य वर्ग के किसी भी पात्र के साथ मनमाना खिलवाड़ किया जा सकता है, किन्तु भक्तों के चरित्रांकन में संयम से काम लेने की आवश्यकता होती है। क्योंकि वे हमारे आदर्श हुआ करते हैं, उन्हें काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि छू नहीं पाते। ये सभी बातें उन भक्तों की महान् साधना और तपस्या का द्योतन करती हैं। भक्त और संत हमारे लिए यथार्थ की अपेक्षा आदर्श अधिक होते हैं। वे हमारे लिए, समाज के लिए पूज्य हुआ करते हैं। नाभादास ने भक्तों के चरित्रांकन में प्रमुख रूप से निम्नलिखित बातों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है:

(क) आदर्श की स्थापना

(ख) चरित्रांकन में श्रद्धा और भक्ति का समावेश

(ग) यथार्थ की उपेक्षा

नाभादास इन भक्तों को भगवान का दूसरा रूप ही सम्भवतः मानते थे। इसका कारण यह है कि इनकी दृष्टि में सभी भक्त महानता और आदर्शों से परिपूर्ण थे। सर्वत्र नाभादास को यह भक्त महान् और आदर्श ही दिखायी पड़ते हैं। जिन

---

१. नाभादास कृत भक्तमाल (प्रकाशित कल्याण भक्त चरितांक), पृ० ३

२. डा० जगन्नाथ प्रसाद : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २६७

संतो की अवहेलना 'ब्राह्मण समाज' ने 'छुआ-छूत' के आधार पर की थी, उन्हें भी कवि आदर्श और महान् मानता है और आदर्श रूप में ही चित्रित करता है। "रैदास' के चरित्राकन मे कवि ने बडे सयम से काम लिया है। उन्हे विवेकी, विमल-वाणी वाला निपुण आदि कहा है। 'रैदास' भक्तो मे महान् थे -

"संदेह ग्रंथि खंडन विपुल, बानि बिमल रैदास की।
सदाचार श्रुति शास्त्र बचन, अविरुद्ध बिचारयौ।"[1]

आदर्श पात्रो के रूप मे चरित्र अकित करने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'रामायण', 'महाभारत' आदि महाकाव्यो मे इसके ज्वलत उदाहरण विद्यमान हैं। भक्त राघवदास जी का चरित्राकन करते हुए कवि ने उन्हे अनेक गुणो से अलकृत किया है। राघवदास जी ने कलिकाल पर विजय प्राप्त कर ली है, आप पहुँचे हुए भक्त और साधु हैं, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ रूपी अग्नि की लहर इस भक्त को स्पर्श तक न कर सकी। उसी प्रकार जैसे सूर्य अपनी किरणो से जल को सुखा देता है, समय आने पर वही जल वर्षा के रूप मे बरसता है। राघव-दास ने भी अनेक लोगो से धन आदि एकत्र कर, फिर उसे साधु-सेवा मे लगा दिया :

"कलिकाल कठिन जग जीति यों, राघौ की पूरी परी ।।
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की लहर न लागी।
सूरज ज्यों जल ग्रहै, बहुरि ताही ज्यों त्यागी ।।
सुन्दर शील सुभाव, सदा संतन सेवाव्रत।
गुरु धर्म निकख निर्वह्यौ, विश्व में विदित बडौ भ्रत ।।....."[2]

राघवदास के चरित्र से सहज ही मे अनेक प्रकार की शिक्षाएँ मिलती है। हमारे लिए वह पूज्य तथा आदर्श है ही जो इस विश्व मे रहता हुआ भी विश्व की कलुपताओ से अपना पृथक् अस्तित्व रखता हो। हमारे सत और भक्त इन्द्रियों को पराजित करना ही अपने जीवन का प्रथम और परम कर्तव्य समझते थे।

नाभादास ने यथार्थ की अवहेलना की है और यही कारण है कि भक्तमाल के चरित्र इतिहास की कसौटी पर अधिक खरे नही उतरते। आदर्श के कारण कवि भक्तो के यथार्थ रूप को भूल-सा गया है। तुलसीदास, मीराबाई आदि का यथार्थ रूप हमारे सम्मुख न आकर, आदर्श स्वरूप ही हमारे सम्मुख आता है। यथार्थ से दूर होते हुए भी सभी चरित्रो का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली बन पडा है। नाभा-

---

१. नाभादास कृत भक्तमाल (प्रकाशित कल्याण भक्त चरितांक), पृ० ३
२. वही

दास-ने एक राम-भक्त की भक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा है कि एक बार वह रामभक्ता स्त्री अपने पति के साथ कहीं जा रही थी। दुर्गम वन के पूर्व ही उन दोनों के साथ दो ठग हो लिए। स्त्री को उन ठगों पर संदेह हुआ तो उन दोनों ठगों ने कहा कि 'हमारे तुम्हारे बीच रघुनाथ जी हैं, डरने की कोई बात नहीं। ऐसा कहकर ठगों ने उन भक्तों (पति-पत्नी) का संदेह दूर किया। जंगल के बीच पहुँचते ही उन ठगों ने उस भक्त (पति) को मार डाला। इस पर वह रामभक्ता पत्नी ने भगवान का स्मरण किया। भगवान प्रकट हुए और इन दुष्टों को मार डाला तथा उस भक्त को पुनः जीवित कर दिया :

"बीच दिये रघुनाथ भक्त, संग ठगिया लागे।
निर्जन बन में जाय दुष्ट कर्म कियो अभागे॥
बीच दियो सो कहाँ ? राम कहि नारि पुकारी।
आये सारंगपानि शोक सागर ते तारी॥
दुष्ट किये निर्जीव सब, दास प्राण संञावरी।
और युगन ते कमल-नैन कलियुग बहुत कृपा करी॥"[1]

वास्तव में ऐसी भक्ति बिना प्रभावित किये नहीं रह सकती। इस प्रकार के भक्त-चरित्रों को पढ़ने के पश्चात् मस्तिष्क पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

'भक्तमाल' के कुछ उन प्रमुख चरित्रों का विवरण नीचे दिया जाता है जो इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं।

१. शंकराचार्य
२. रामानन्द
३. तुलसीदास
४. सूरदास
५. कबीरदास
६. मीराबाई

(१) शंकराचार्य : शंकराचार्य भारतवर्ष के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व को लेकर अवतरित हुए थे। दर्शन के इतिहास में शंकराचार्य की गणना अच्छे विचारकों में होती है। नाभादास ने 'भक्तमाल' में शंकराचार्य के विषय में कहा है कि वे वर्णधर्म, आश्रमधर्म और भागवत-धर्म के पालन करने वाले थे। उन्होंने धर्म-विमुख, जैन, बौद्ध आदि अनीश्वरवादियों को ईश्वर की ओर उन्मुख

१. सम्पादक रूपकला जी : भक्तिसुधा स्वाद तिलक (टीका भक्तमाल)

किया। इन समस्त बातों का समर्थन विद्वान इतिहासज्ञ डा० ईश्वरी प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'भारत का इतिहास'[१] में दिया है।

(२) **रामानन्द** : युग प्रवर्तक रामानन्द 'भक्ति-आंदोलन' के प्रमुख अगुवा थे। इनके प्रयास से भक्ति की धारा में एक अद्भुत जागृति एवं क्रान्ति समुत्पन्न हुई। 'भक्तमाल' के उल्लेख से विदित होता है कि ये दक्षिण देश के रहने वाले थे और एक संन्यासी के चेले थे। एक दिन वे रामानुज स्वामी की गद्दी के महंत राघवानन्द स्वामी के दर्शन को गये। उन्होंने कहा कि तुम्हारी आयु अब बहुत कम रही है जो कुछ करना हो कर लो। यह सुनकर रामानन्द जी राघवानन्द जी के चेले हो गए। राघवानन्द जी ने रामानन्द की मृत्यु के समय उन्हें ब्रह्मांड में प्राण चढ़ाकर समाधिस्थ कर दिया। जब मृत्यु का दिन टल गया तब फिर प्राण वायु उतार कर बहुत दिनों तक जीने का वरदान दिया।[२] रामानन्द के जिन प्रमुख शिष्यों का विवरण कवि ने 'भक्तमाल' में दिया है, वे सभी इतिहास-प्रसिद्ध संत हुए हैं जैसे कबीर, पीपा, रैदास आदि।

रामानन्द ने बिना किसी भेद-भाव के, अनेक निम्न वर्ण के लोगों को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया था। डा० ईश्वरी प्रसाद ने भी अपने इतिहास में इस बात का संकेत किया है कि रामानन्द ने वर्ण-भेद को मिटाने का प्रयास किया।[३] भारतीय धर्म के इतिहास में रामानन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण था। रामानन्द बड़े उदारचेता व्यक्ति थे। उनकी उदारता का उल्लेख डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने निम्न लिखित शब्दों मे किया है :

"उदारता रामानन्द स्वामी की महानता का लोक प्रचलित प्रमाण हैं। इसी कारण उन्होंने कबीर जुलाहा, रैदास चमार, सेना नाई और धना जाट को भी अपना शिष्य बनाया। कहा तो यहाँ तक जाता है कि मुसलमानों द्वारा बल पूर्वक धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान हुए लोगों को भी उन्होंने अपने 'राम तारक मंत्र' से पुनः हिन्दू बनाया था।"[४]

---

१. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारत का इतिहास, पृ० २३४

२. सम्पादक राधाकृष्णदास : भक्तनामावली ध्रुवदासकृत, पृ० ८०

३. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारतवर्ष का इतिहास (धार्मिक आंदोलन अध्याय) पृ० १३३

४. रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृ० ४९

आचार्य शुक्ल जी ने भी रामानन्द के उदार और व्यापक दृष्टिकोण का उल्लेख किया है।[1] आचार्य मिश्रबंधु भी इस मत से सहमत हैं।[2]

(३) **तुलसीदास** : 'भक्तमाल' में तुलसी के महत्त्व को स्वीकार करते हुए नाभादास जी ने उन्हें 'भक्तमाल' का 'सुमेरु' कहा है। हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहासकार तुलसी को युग का महान् व्यक्ति मानते हैं। 'भक्तमाल' में तुलसी के जन्म आदि से सम्बद्ध किसी भी घटना का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु फिर भी तुलसी के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर किसी प्रकार का भी संदेह नहीं किया जा सकता। डा० ग्रियर्सन भी तुलसी को समय का सबसे बड़ा लोकनायक मानते हैं।

आचार्य शुक्ल जी सर जार्ज ग्रियर्सन से मत साम्य रखते हुए कहते हैं "भक्ति की चरम सीमा पर पहुँच कर भी लोकपक्ष उन्होंने नहीं छोड़ा। लोकसंग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था। कृष्णोपासक भक्तों में इस अंग की कमी थी। उनके बीच उपास्य और उपासक के सम्बंध की ही गूढ़ातिगूढ़ व्यंजना हुई, दूसरे प्रकार के लोकव्यापक नाना सम्बंधों के कल्याणकारी सौंदर्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई। यही कारण है कि इनकी भक्ति रस भरी वाणी जैसी मंगलकारिणी मानी गई है वैसी और किसी की नहीं।"[3] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी इन्हें हिन्दी का अद्वितीय और प्रतिभा में सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं।

"...हिन्दी में इनके ऐसा समर्थ कवि दूसरा नहीं।....अतः तुलसीदास को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानना उचित ही है।[4]

(४) **सूरदास** : सूरदास के काव्य की प्रशंसा में कवि (नाभादास) ने लिखा है "सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन न करै।"[5] सूरदास के विवरण से किसी प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों की जनकारी नही होती, केवल उनकी काव्यगत विशेपताओं का ज्ञान होता है। सूरदास इतिहास प्रसिद्ध हुए हैं और उन्हें सम्राट् अकबर का समकालीन माना गया है।[6] नाभादास के प्रस्तुत कथन से आचार्य

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७६
२. मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृ० ७३
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४१
४. वाङमय विमर्श, पृ० २७२
५. भक्तमाल, (कल्याण भक्त चरितांक में प्रकाशित) पृ० ३
६. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६२

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पूर्णतया सहमत है। उनका कथन है कि "सूर की समस्त विशेषताओ पर दृष्टि रख कर यह कहना ठीक ही है 'तत्व तत्व सब अँधरा कहिगा, कठवै कही अनूठी।' अर्थात् सूर ने प्रेम के प्रसग की इतनी वाते कह दी कि अन्य कवियो की उस प्रसग की उक्तियाँ जूठी जान पडती है।"[1]

कबीरदास : नाभादास जी ने कबीर के सम्वंध मे जो कुछ लिखा है उसमें तीन वाते विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है :

(१) "कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट्दरसनी"
(२) "भक्ति विमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो"
तथा "जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।"
(३) पक्षपात नहि बचन, सबही के हित की भाखी"

कहना न होगा कि इन्ही तीन विशेषताओं पर प्रकाश प्राय सभी इतिहासकारों और लेखको ने डाला है।

आचार्य शुक्ल जी[2], आचार्य मिश्रबन्धु[3] आदि विद्वान इतिहासकारो ने कबीर की इन विशेषताओ की वारवार सराहना की है। कबीर के सम्वध मे आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के निम्नलिखित कथन वहुत ही ध्यान देने योग्य है :

"कबीर साहब ने अपनी रचनाओ द्वारा ज्ञान और भक्ति दोनो का समन्वित रूप सामने रखा....हिन्दुओ और मुसलमानो की एकता स्थापित करने के प्रयत्न में ये विशेष रूप से सलग्न हुए....जो भी हो कबीर के प्रयत्न से जनता मे एकता का भाव अवश्य जगा।"[4]

डा० ईश्वरी प्रसाद ने भी कबीर के खडन-मडन की प्रवृत्ति का उल्लेख किया है।[5] खडन-मडन का उल्लेख करते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है[6] कि 'मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता कबीर ने अपने साहित्य मे कई स्थलो पर वर्णित की है'। नाभादास ने लिखा है कि कबीर ने बीजक, रमैनी[7] शब्दी आदि की भी रचना

---

१. वाड़मय विमर्श, पृ० २८०
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७७-८०
३. मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृ० १८१-८२
४. वाड़मय विमर्श, पृ० २५४
५. डा० ईश्वरी प्रसाद : भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २००
६. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८०
७. "हिन्दू तुरकप्रमान रमैनी, शबदी, साखी" (भक्तमाल)

की थी। कबीरदास के जन्म, समय आदि का कोई उल्लेख 'भक्तमाल' में नहीं उपलब्ध होता।

(६) मीरांबाई : मीरांबाई के चरित्रांकन में नाभादास ने निम्नलिखित कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश किया है :

(क) वे कृष्ण भक्ति में तन्मय रहती थीं।

(ख) मृत्यु के लिए उनके सम्बंधियों ने उन्हें विष दिया जो भगवान की कृपा से अमृत हो गया।

मीरां से सम्बद्ध यह दोनों ही घटनाएँ इतिहास-प्रसिद्ध है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भी विष देने के प्रयत्नों और मीरां की भक्ति-भावना का उल्लेख किया है। रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि, "इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर भगवत्कृपा से विष का प्रभाव इन पर न हुआ।"[1] विद्वान साहित्य के इतिहासकार मिश्रबंधुओं ने भी इस बात का संकेत किया है कि मीरा को मार डालने के कई प्रयत्न किये गए।[2] कर्नल टाड ने भी इन घटनाओं का समर्थन अपने 'राजस्थान के इतिहास' में किया है।[3]

कलियुग के अन्य अनेक चरित्र भी ऐतिहासिक होते हुए भी इतिहास के क्षेत्र से दूर हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हैं तो वे चरित्र इतिहास-प्रसिद्ध, किन्तु नाभादास ने केवल उनका उल्लेख मात्र किया है, उनके चरित्रों के ऐतिहासिक तथ्यों (जन्म, मृत्यु, समय आदि का विवरण नहीं दिया) का अभाव है। सूरदास मदन मोहन, नन्ददास, रैदास, कृष्णदास, राँका, बाँका, सूरदास बिल्वमंगल आदि अनेक भक्तों के चरित्रांकन में कवि (नाभादास) ने किसी प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों का समावेश नही किया, प्रशंसा के रूप में उनका उल्लेख मात्र कर दिया है। अरबी और फारसी के 'तज्किरों' की भाँति ही नामोल्लेख करके ही कवि संतुष्ट हो जाता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कवि इतिहास लिखने नहीं बैठा था, उसने अपनी श्रद्धा और भक्ति को श्रद्धाजलि रूप में 'भक्तमाल' में प्रस्तुत किया है।

'भक्तमाल' के पूर्वार्द्ध में अनेक देवी-देवताओं का विवरण दिया गया है जिन्हें इतिहास की कसौटी पर कसना भूल होगी। क्योंकि वे सभी चरित्र प्रागैतिहासिक

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८४
२. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, पृ० २५८
३. राजस्थान का इतिहास

है। 'रामायण', 'महाभारत', 'गीता', आदि में ऐसे चरित्रों का उल्लेख उपलब्ध होता है जो यथार्थ की अपेक्षा काल्पनिक अधिक है।

फ़ारसी और अरबी तथा उर्दू साहित्य में 'तज़्किरा' लिखने की प्रथा बड़ी प्राचीन है। 'तज़्किरों' में समय विशेष, वर्ग विशेष, के उल्लेखनीय व्यक्तियों का उल्लेख मात्र और कभी-कभी सम्पूर्ण जीवनी वर्णित रहती है। इन 'तज़्किरों' में अनेक हिन्दी के कवियों के विवरण भी उपलब्ध होते है। उदाहरण के लिए, 'सर्वे-आजाद' को ले सकते है। इस ग्रन्थ में हिन्दी के निम्नलिखित कवियों का उल्लेख मिलता है:

(क) शेखशाह मोहम्मद और उनकी स्त्री चम्पा
(ख) सैयद निजामुद्दीन
(ग) दीवान सैयद रहमतुल्ला
(घ) मीर अब्दुल जलील
(च) सैयद गुलाम नवी रसलीन
(छ) सैयद वरकतुल्ला 'प्रेमी'
(ज) मीर अब्दुल वाहित जौकी
(झ) मोहम्मद आरिफ

इस प्रकार के ग्रन्थों का हिन्दी में अभाव ही रहा है। 'भक्तमाल' और 'वार्ताओं' को अवश्य इस श्रेणी में रखा जा सकता है जिनमें संकेत रूप में भविष्य के इतिहास की सामग्री देखी जा सकती है। 'भक्तमाल' को हिन्दी साहित्य के इतिहास के निर्माण मे एक महत्त्वपूर्ण आधार माना जा सकता है। किन्तु चरित्रांकन अधिक प्रामाणिक न होने के कारण इस ग्रन्थ को शुद्ध इतिहास भी कह देना अधिक युक्ति-संगत न होगा। 'तज़्किरो' की भाँति ही 'भक्तमाल' में भी अनेक भक्तों का विवरण मिलता है। फिर भी 'तज्किरों' और 'भक्तमाल' के वर्ण्य-विषय में अन्तर है, यद्यपि वर्णन-शैली पर्याप्त साम्य रखती है।

इतिहास के लिए मानव जीवन के तथ्यों की अपेक्षा होती है। नाभादास ने इस प्रकार के जीवन से सम्बद्ध किसी भी तथ्य विशेष का उल्लेख नही किया, केवल प्रशंसात्मक रूप में चरित्र से सम्बद्ध किसी घटना विशेष का उल्लेख कर दिया है, जो चरित्र को प्रभावशाली वनाने में सहायक हुई है। कवि का उद्देश्य था जनता के मध्य भक्तों की पुनः प्रतिष्ठा और इसमें कवि को सफलता भी आशातीत प्राप्त हुई।

इतिहासकार[1] का उद्देश्य समय विशेष की विचार-धारा को यथातथ्य उपस्थित करना होता है, ताकि |उन विचार-धाराओं के माध्यम से उपदेश देना। नाभा-दास का प्रथम और पहला उद्देश्य था भक्त-चरित्रों के माध्यम से जनजीवन तक भक्ति का संदेश पहुँचाना। यदि नाभादास को इतिहास लिखना अभीष्ट होता, तो उन्होंने समय की विचार-धारा को यथातथ्य, मानव-जीवन के तथ्यों का उद्घाटन क्यों न किया होता, केवल भक्तों की प्रशंसा तक ही अपने को क्यों सीमित रखते।

साहित्य विचारों, अनुभूतियों, कल्पना आदि का सच्चा स्वरूप कहा जा सकता है। साहित्य में समाज के विचारों, भावनाओं, प्रवृत्तियों आदि की छाया प्रतिविम्बित हुआ करती है। इनके अभाव में साहित्य वैयक्तिक होगा, वह जनता का प्रतिनिधित्व करने में सर्वथा असमर्थ होगा। ऐसे साहित्य में न समाज होगा, और न वह समाज में किसी प्रकार का स्थायित्व प्राप्त कर सकेगा। साहित्य रूपी जल कुएँ की भाँति किसी परिधि में बँध कर नहीं रहता, वह सरिता की भाँति प्रवहमान रहता है। 'भक्तमाल' में जीवन के लिए जिस आदर्श मार्ग की योजना की गई है, उससे न तो यह ग्रन्थ कभी पुराना ही होगा और न इसका महत्त्व ही घटेगा।

---

१. "Historians generally illustrate rather than to correct the ideas of the communities within which they live and work...."

Arnold J. Toynbee : A Study of History, p. 1

षष्ठ परिच्छेद

हिन्दी में जीवन-चरित साहित्य का उद्भव और विकास

मनुष्य अनादि काल से सत्य के अन्वेषण और उसकी अनुभूति मे सलग्न रहा है। मानव की प्रवृत्तियो के इतिहास की तह मे सत्य की अनुभूति की भावना बडी प्रचुर ओर सामान्य रूप मे विद्यमान रही है। 'सत्य, शिव ओर सुन्दरम्' की भावना मानव-जीवन को चिरकाल से अनुशासित करती रही है। इस आदर्श वाक्य ने भारतीय जीवन को भी उचित दिशा मे अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है। सत्य की अनुभूति के पश्चात् मानव ने इस भावना को प्रसारित और अभिव्यक्त करने का भी प्रयास किया है। इसी सत्य की अभिव्यक्ति को ही साहित्य कहा जा सकता है।[1] सत्य की इसी विशेष अनुभूति को समय-समय पर मानव ने भाषा के माध्यम से व्यक्त किया और आगे चलकर यही व्यक्त की हुई अनुभूति साहित्य की आधारशिला बनी।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है, छाया है और है समाज की अभिव्यक्ति। इसीलिए कहा भी जाता है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है।' 'साहित्य मानवता

---

१. The great impulses behind literature may, I think, be grouped with accuracy enough for practical purposes under four head—(a) our desire for self-expression, (b) our interest in people and their doings, (c) our interest in the world of reality in which we live and in the world of imagination which we conjure into existence, and (d) our love of form as form.

Hudson. An Introduction to the Study of Literature, p. 11, Ed. 1945.

का मस्तिष्क हैं।[१] समाज मनुष्यों का वह समूह है जिसमें उसके हित-चिंतन, दुःख-सुख एवं जीवन के व्यवहार सन्निहित रहते हैं। समाज एक ऐसे अगाध सागर के समान है जिसमें अनेक विभिन्नाकार नदियाँ, सरिताएँ मिलकर उसी में समाहित हो जाती हैं। जन-समुदाय का हर एक व्यक्ति जब अपने धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सम्बंधों को एक दूसरे से सम्बद्ध करता है, तब इस प्रकार की एक भावना से परिचालित व्यक्तियों के एकीकरण को समाज कहते हैं। जहाँ पर मनुष्य अपनी विचार-धारा तथा भावनाओं का विकास एवं आदान-प्रदान करता है, जहाँ उसके जीवन की गति में प्रवाह आता है, जहाँ वह अपने जीवन के उद्देश्यों को बिना संघर्ष के सिद्ध कर लेता है, उसे समाज कहा जा सकता है। इसी हमारे समाज का साहित्य से घनिष्ट सम्बंध है। साहित्यकार समाज के वातावरण को लेकर ही, अपने विचारों में उसे अनुरंजित कर, अपने व्यक्तित्व की छाप लगाकर जो कुछ भी भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है, वह साहित्य का सत्य रूप हुआ करता है। समाज के बिना साहित्य का अस्तित्व सम्भव नहीं और बिना साहित्य के समाज मनुष्यों के एक जर्जरित ढाँचे के सिवाय और कुछ भी नहीं है। समाज में मनुष्य के कल्याण की भावना सर्वोपरि रहा करती है। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वह सदैव विश्लेषण से संश्लेषण की ओर बढ़ता रहता है और उसकी इसी प्रवृत्ति का द्योतन समाज करता है जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन 'जन-हितार्थ' का स्वरूप धारण कर लेता है। व्यक्ति समाज के इसी कल्याणमय भाव से प्रेरणा प्राप्त कर साहित्य-सर्जन करता है।[२] साहित्य को मानवता के उत्थान-

---

१. Literature is the brain of humanity.

२. We are strongly impelled to confute to others what we think and feel, hence the literature which directly expresses the thoughts and feelings of writer, we are intensely interested in men and women, their lives, motives. passions. relationships. hence the literature which deals with great drama of human life and action .... Man, as we are often reminded, is a social animal and as he is thus by the actual constitution of his nature unable to keep his experiences, observations. ideas, emotions, fancies to himself. but is on the contrary

पतन का क्रमिक इतिहास भी कहा जा सकता है। साहित्य का यह परम कर्तव्य भी है कि वह मानव-जीवन का विश्लेषण, आलोचना और उसकी विषमताओं आदि का उद्घाटन करे और करता भी ह। साहित्य का उद्गम स्थल मनुष्य का जीवन ही है।[१] मनुष्य के जीवन या उसके चरित्र से साहित्य के गूढ़ एवं अनिवार्य तत्वों की खोज भी की जा सकती है।[२] साहित्य में मनुष्य की अनुभूतियों, बौद्धिक आदान-प्रदान और व्यवहार आदि का सच्चा और विस्तृत लेखा-जोखा रहा करता है। किसी भी अच्छे ग्रन्थ में मानव की घनीभूत अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति रहती है।[३]

जब साहित्य और समाज एक दूसरे पर आश्रित है तथा एक दूसरे के अस्तित्व का द्योतन करते है, तो साहित्य और जीवन का अन्योन्याश्रय सम्बंध होना स्वाभाविक ही है। जीवन साहित्य का उद्गम स्थल है और साहित्य जीवन का नियामक तथा परिमार्जक है। साहित्य जीवन से अपने लिए कलेवर ग्रहण करता है। साहित्य

---

under stress of a constant desire to impart them to those about him.... Ibid, p. 11.

१. To say that literature grows directly out of life is of course to say that it is in life itself that we have to seek the sources of literature, or in other words, the impulses which have given birth to the various forms of literary expression. Ibid, p. 11.

२. If Literature be at bottom an expression of life, and if it be by virtue of life, which it expresses, that it makes its special appeal, then the ultimate secret of its interest must be sought in its essentially personal character. Ibid, p. 14.

३. A great book grown directly out of life, in reading it we are brought into large, close and fresh relations with life, and in that fact lies the final explanation of its power. Literature is a vital record of what men have seen in life, what they have expressed of it, what they have thought and felt aspects of it. Ibid.

में जीवन के लगभग सभी रूपों का, आकार-प्रकार विवरण उपलब्ध होता है। साहित्य जीवन के मार्ग को प्रशस्त कर गंतव्य की ओर ले जाता है। साहित्य जीवन के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान करता है। साहित्य में मानव-जीवन के विश्लेषण के तत्व भी होते हैं। जीवन से दूर, अनुपयोगी साहित्य अपना कोई महत्त्व नहीं रखता।[१]

मानव-जीवन की कथा कहता हुआ साहित्य अनेक रूपों में हमारे सम्मुख आता है। साहित्य के इन विशिष्ट स्वरूपों में कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना, गद्य काव्य, रूपक तथा जीवनी प्रमुख हैं। इन स्वरूपों के भी भेद किये गएहैं, किन्तु हमारे विषय का सम्बंध केवल जीवनी से ही है।

'जीवनी' अथवा 'जीवन-चरित्र' व्यक्ति विशेष के जीवन का वृत्तान्त हुआ करता है। यह भी कहा जा सकता है कि किसी के जीवन को विवरणात्मक रूप में प्रस्तुत करना ही जीवनी है। अब 'जीवनी' को कुछ परिभाषाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए।

'दी आक्सफोर्ड डिक्शनरी' में जीवनी को परिभाषित करते हुए लिखा गया है, कि 'जीवनी व्यक्तियों के जीवन का साहित्य के रूप मे इतिहास है'।[२] पाश्चात्य आलोचक हेराल्ड निकल्सन ने इस परिभाषा को युक्तिसंगत और पूर्ण रूप उपयुक्त मानकर ग्रहण कर लिया है। इस विद्वान् ने इसके तीन प्रमुख तत्वों पर अधिक जोर दिया है और वे हैं 'इतिहास', 'व्यक्ति' और 'साहित्य'। स्पष्ट है कि जीवनी किसी भी व्यक्ति के जीवन का कलात्मक एवं यथार्थ का पूर्ण विवरण है। अतएव जीवनी में उन बातों के लिए कोई स्थान नहीं जो व्यक्ति के जीवन से प्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध न हो तथा कलात्मकता और ऐतिहासिकता से दूर हो।[३] जीवनी के विषय में कहा गया है कि "व्यक्ति के जीवन का इतिहास तथा उसके (व्यक्ति) जीवन की घटनाओं का इतिहास अथवा उसके (व्यक्ति) मत,

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : प्रेमचन्द्र, पृ० ५०

२. The history of the lives of individual men as a branch of literature—Oxford Dictionary.

३. This definition is convenient, it insists on three essential elements—'History', 'Individual', ''Literature'.

विचार एवं समय की व्याख्या।"[1] इस परिभाषा के अतिरिक्त इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार "जीवनी किसी व्यक्ति विशेष की ही हो सकती है, सम्पूर्ण जनसमूह की नहीं।" सम्पूर्ण समूह अथवा जाति का विवरण प्रस्तुत करना इतिहास का काम है।[2] जीवनी को इतिहास का एक विशिष्ट रूप ही माना जा सकता है। इन परिभाषाओं से जीवनी विषयक आधुनिक धारणा भिन्न है। आज के युग मे जीवनी का उद्देश्य है जीवन के संघर्षों द्वारा व्यक्ति की आत्मा का सत्य चित्रण।[3] इसके अतिरिक्त जीवनी को "जीवन भर का वृत्तान्त" भी कहा गया है।[4] किन्तु जीवनी के विषय में इतना कह देना ही पर्याप्त नही है।

इन समस्त परिभाषाओं में 'जीवनी' शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। इतिहास शब्द के प्रयोग से कुछ भ्रम-सा उत्पन्न हो जाता है कि क्या जीवनी और इतिहास में कोई अन्तर नही है ? वास्तव में जीवनी न तो विशुद्ध इतिहास ही है और न उपन्यासों की ही श्रेणी में इसे रखा जा सकता है। जीवनी का अपना अस्तित्व है जो इन दोनों से भिन्न है। जीवनी और इतिहास में निम्नलिखित अन्तर है :

(१) जीवनी और इतिहास के प्रेरणा सूत्रों तथा विषय से महान् अन्तर है।

(२) जीवनी एक व्यक्ति की, इतिहास युगविशेष की प्रवृत्तियों, परिस्थितियों और घटनाओं का विवरण है।

(३) जीवनी में वर्णित विषय का सांगोपांग वर्णन, इतिहास सूक्ष्मता से दूर है।

जीवनी और इतिहास मे कुछ समानताएँ भी है :

(१) जीवनी नायक के चरित्र का निष्पक्ष और तटस्थ चित्रण, इतिहास में ऐसा ही।

---

१. History of the life, of an individual. It may be a history of facts of an individual life, or an interpretation of his ideas and times by the writer.

The new Encyclopaedia Americana Vol. III. p. 722

२. That form of history which is applied not to races or masses of men, but to an individual.

Encyclopaedia Britanica. Vol. III, Ed. II. p.953

३. वही, पृ० ९५३   ४. हिन्दी शब्दसागर

(२) जीवनचरित में बाह्य-अभिव्यक्ति, अनपेक्षित इतिहास भी इसका समर्थक है।

(३) इतिहास का सत्य जीवनी के लिए अपेक्षित है।

पाश्चात्य आलोचक हेराल्ड निकल्सन ने जीवनी को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है :

(१) **विशुद्ध जीवनी** : ऐतिहासिक सत्य की अभिव्यक्ति, लेखक की तटस्थता, सुसंगठित, कलात्मक और वैज्ञानिक क्रमवद्धता आवश्यक है।

(२) **अशुद्ध जीवनी** : भावुकता, व्यक्तिगत लगन और चरित्रनायक के प्रति अत्यधिक प्रेम-भाव इसके आधार है।[१]

जीवनी के विषय में यह कहना भी अधिक संगत न होगा कि चरितनायक के जीवन भर की समस्त घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास है। जीवनी लेखक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह नायक की कुवृत्तियों का संक्षिप्त वर्णन करके आगे बढ जाय और नायक के गुणों का विस्तार से वर्णन करे।[२] इस विषय में

---

१. "I do not think that it is necessary at this stage to say anything further regarding. 'pure' and 'impure' biography. I have defined the former as the truthful and deliberate record of an individual life written as a work of intelligence. I have indicated that biography becomes 'impure' when it is either untruthful or unintelligent or concerned with considerations extraneous to its own purposes".

The Development of English Biography, p. 14

२. "The business of biographer is often to pass lightly over those performances and incidents, which produce vulgar greatness. to lead the thoughts into domestic prevenes, and display the minute details of daily life, where exterior appendages are cast aside and men only excel each other in prudence and virtue." (By Dr. Johnson).

English Biography in Seventeenth Century, Vuran De Sola Paito, p. 11

डा० जानसन ने बहुत कुछ कहा है। डा० जानसन से मिलते-जुलते विचार जेम्स बासवेल के भी है :

"I cannot conceive a more perfect mode of writing any man's life, than not only relating all the most important events of it in their order, but interviewing what he privately wrote and said, and thought by which mankind are enabled as it were to him live, and to, "live o'er each scene" with him, as he actually advanced through the several stages of his life."[1]

डा० जानसन और बासवेल के मतों से स्पष्ट हो जाता है कि जीवनी के लिए यह आवश्यक नही कि उसमें जीवन भर की घटनाओं का क्रमिक इतिहास निहित हो, वरन् यह विद्वान् जीवनी को जीवन का एक मनोवैज्ञानिक और रोचक अध्ययन मानते है। इस प्रकार इन विद्वानों ने जीवनी में मानसिक क्रियाओं को प्रधानता दी है।

हेराल्ड निकल्सन और विलियम डी सोला पिटो के मतानुसार जीवनी साहित्य के निम्नलिखित आवश्यक तत्व है :

(क) **किसी व्यक्ति विशेष का जीवन** : अमुक व्यक्ति का यह जीवन काल्पनिक तत्वो से पोपित नही होना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि यथार्थ का ही चित्रण होना चाहिए।

(ख) **व्यक्ति-विशेष के जीवन का यथातथ्य चित्रण तथा ऐतिहासिक यथार्थता** : इस दृष्टिकोण से जीवन के उज्वल और कलुप से पूर्ण, पक्षों का उद्घाटन जीवनी मे आवश्यक है।

(ग) **जीवनी में जीवनी** : लेखक की निप्पक्षता और तटस्थता का संयोग।

(च) **वैज्ञानिक दृष्टिकोण** : जीवनी के लिए यह आवश्यक है कि उसमें वैज्ञानिक क्रमवद्धता हो। इसके अभाव में सामग्री का संकलन और संयोजन ठीक नहीं हो सकता।

(छ) **मनोवैज्ञानिक विश्लेषण** : किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेपण आवश्यक है। इसके आधार पर किसी भी व्यक्ति के मर्म तक आसानी के साथ पहुँचा जा सकता है।

---

१. Life of Johnson (1791)

(ज) कलात्मकता-जीवन के मार्मिक पक्षों की सफल अभिव्यंजना रचना को कलात्मकता प्रदान करती है।

जीवनी के मुख्य भेद निम्नलिखित हैं :

(१) जीवन-चरित्र

(२) आत्म-चरित्र

(३) संस्मरण

(४) दैनन्दिनी (डायरी)

(५) पत्र

यद्यपि जीवनी के विषय में बहुत कुछ इसके पूर्व भी कहा जा चुका है, किन्तु यहाँ भी जीवनी के विषय में कुछ कह देना आवश्यक है। जीवनी को हम किसी व्यक्ति के जीवन भर की घटनाओं को, एक मनोवैज्ञानिक और कलात्मक ढंग की, एक ही तारतम्य में श्रृंखलावद्ध प्रस्तुत की हुई सामग्री कह सकते हैं।

आत्मचरित जीवनी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जीवनी साहित्य के इस उपभेद में मनुष्य दूसरों के सम्बंध में कुछ न कहकर अपने ही सम्वध में कहता है। श्री गुलावराय के शब्दों में, "साधारण जीवनचरित्र से आत्म-कथा में कुछ विशेषता होती है। आत्म-कथा लेखक जितना अपने वारे में जान सकता है, उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नही जान सकता, किन्तु इसके कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति वाधक होती है और किसी के साथ शील-संकोच आत्म-प्रकाश में रुकावट डालता है। यद्यपि सत्य के आदर्श से तो दोनों ही प्रवृत्तियाँ निन्द्य हैं तथापि अनावश्यक आत्मविस्तार कुछ अधिक अवांछनीय है। शील-संकोच के कारण पाठक को सत्य और उसके अनुकरण के लाभ से वंचित रखना ही वांछनीय नहीं कहा जा सकता। साधारण जीवनी-लेखक की अपेक्षा आत्मकथा-लेखक को ऊव से बचने और अनुपात का अधिक ध्यान रखना पड़ता है।. . .जीवनी लिखने वाले को दूसरे के दोप और आत्मकथा लिखने वाले को अपने गुण कहने में सचेत रहने की आवश्यकता है।"[१] आत्मचरित, जीवनचरित से भिन्न और स्वतंत्र रचना है। इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है। आत्मचरित आत्म-परिचय का सवसे विश्वस्त और सुलभ साधन है।[२]

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २४९

२. If you do not want to explore an egoism, you should not read auto-biography.

आत्मचरित्र मे लेखक अहभावना की अभिव्यजना भी खूब करता है। एच० जी० वेल्स का कहना है कि यदि आप लेखक की अहभावना से बचना चाहते है तो आत्मकथा की ओर दृष्टिपात मत करिये।[१] किन्तु वास्तव मे आत्म-चरित-लेखक का यह परम कर्तव्य होना चाहिए कि वह आत्मप्रशसा मे सत्य की अवहेलना न करे। आत्मचरित एंक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम लेखक के विषय मे भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर सकते है। कारण एक मनुष्य जो कुछ अपने विषय मे कहेगा, वह अधिक प्रामाणिक होगा अपेक्षा दूसरे द्वारा कही हुई सामग्री से। आत्मचरित-लेखक को अपने विषय मे कुछ कहते समय बहुत सतर्क रहना चाहिए अन्यथा उसे आलोचना का पात्र बनना ही पडेगा।

अब सस्मरण के विषय मे भी विचार कर लेना चाहिए। किसी व्यक्ति-विशेष के विषय मे स्मरण रखने योग्य घटना को सस्मरण कहते है।[२] अग्रेजी साहित्य मे सस्मरण से अभिप्राय होता है 'घटनाओ का उल्लेख' या 'आत्म-जीवनी सम्बधी उल्लेख'।[३] सस्मरण-लेखक स्वय नायक हो सकता है अथवा कोई अन्य भी हो सकता है जो किसी व्यक्ति के सम्बंध मे अपनी स्मृति को आधार बना कर कुछ घटनाओ की अभिव्यक्ति करे।

सस्मरण मे न तो आत्मचरित की एकता होती है और न जीवनचरित्र की क्रमबद्धता। सस्मरण मे चरितनायक के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ की अभि-व्यक्ति होती है। अत इन सस्मरणो से लेखक एव चरितनायक के व्यक्तित्व का ज्ञान भलीभॉति नही हो सकता। आज के युग मे सस्मरण बडी व्यापकता के साथ लिखे जा रहे है।

दैननदिनी जीवनी साहित्य का एक प्रकार है। दैननंदिनी मे मनुष्य अपने दैनिक जीवन के समस्त रहस्यो को प्रकट करता है। डायरी मे कोई भी व्यक्ति स्वच्छन्दता पूर्वक बिना किसी रोक-टोक के अपने गुप्त तथा व्यक्तिगत चरित्र

Experiments in Autobiography, Vol. II, Ed. 1934, p. 417

१. Mitch A History of Auto-biography in Antiquity Vol. I, p.8 Ed. 1950.

२. हिन्दी शब्दसागर

३. आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी

की अभिव्यक्ति करता है। डायरी-लेखक निर्भीक होता है। डायरी के पढ़ने से लेखक के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

दैनंदिनी में जीवनी के दो रूप मिलते हैं. कभी-कभी लेखक अपने विषय में लिखता है और कभी-कभी किसी दूसरे के विषय में जो उससे घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होता है। डायरी-लेखक जीवन में घटित होने वाली अनेकों घटनाओं और मनोविकारों की ओर विशेष रूप से ध्यान देता है. अतः उसका कार्य अत्यन्त दुरूह है। यदि डायरी-लेखक नियमित रूप से डायरी लिखता है तो उसमें जीवन का सम्पूर्ण रूप अथवा चरित्र उपलब्ध होता है अन्यथा मुख्य घटनाएँ ही प्रकाश में आ पायेंगी।

श्री गुलाबराय के शब्दों में, "पत्रों का स्थान एक प्रकार से आत्मकथा में ही आता है। अन्तर केवल इतना ही है कि आत्मकथा में व्यक्ति का इतिहास सम्बद्ध होता है. पत्रों में कुछ असम्बद्धता भी रहती है। पत्र साहित्य का सबसे बड़ा महत्त्व इस बात में है कि उनके द्वारा हमको लेखक के सहज व्यक्तित्व का पता चलता है। उसमें हमको बने-ठने. सजे-सजाये मनुष्य का चित्र नहीं वरन् एक चलते-फिरते मनुष्य का चट चित्र (Snapshot) मिल जाता है। लेखक के वैयक्तिक सम्बंध, उसके मानसिक और बाह्य संघर्ष तथा उसकी रुचि तथा उन पर पड़ने वाले प्रभावों का हमको पता चल जाता है। पत्रों में कभी-कभी तत्कालीन सामाजिक. राजनीतिक या साहित्यिक इतिहास की झलक भी मिल जाती है। आत्मकथा की भाँति कुछ पत्रों का महत्त्व उनके विषय पर निर्भर रहता है. कुछ का शैली पर। जिन पत्रों का विषय और शैली, दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, वे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाते हैं।"[1]

पत्र-साहित्य के अन्तर्गत लेखक का व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रतिबिम्बित होता है। इसका कारण यह है कि पत्रों में व्यक्ति अपने भावों को पूर्णतया स्पष्ट रूप में व्यक्त करता है।

जीवनी साहित्य में इन प्रकार के सभी रूपों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दी जीवनी साहित्य (पूर्वार्द्ध)

सर्वप्रथम जीवनी साहित्य के विषय में जो एक कौतूहलपूर्ण प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उठता है वह यह कि जीवनी साहित्य के सृजन का ध्येय अथवा लक्ष्य क्या है? स्वभावतः मनुष्य अपने से महान् व्यक्ति का सम्मान करता ही है। इस

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २५२

प्रकार के भावो की जननी महान व्यक्तियों की कृतियाँ ही हुआ करती है। किसी व्यक्ति विशेष के उन गुणों से प्रभावित होकर, जिनका प्रभाव जन-सामान्य पर व्यापक हुआ करता है, हमारा हृदय श्रद्धा की पुष्पांजलि उसके चरणों मे अर्पित करता है। महान् व्यक्तियो के प्रति आदर और सम्मान की यह भावना ही जीवनी-लेखन-प्रणाली का उद्‌गम स्थल है। वास्तव मे जीवनी के उद्‌गम का स्रोत हमारी इच्छाओं और प्रवृत्तियो मे निहित है। मनुष्य स्वभाव से ही पूज्य मनुष्यो की स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास करता है, जो अपने सामान्य जन-समूह से कुछ भिन्न हुआ करते है।[१] इस प्रकार स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने का प्रमुख माध्यम है जीवन की विशेपताओ का लिपिबद्ध किया जाना।

तथ्य तो यह है कि मानव जाति का इतिहास उस जाति के महान् व्यक्तियों का ही इतिहास हुआ करता है। कार्लाइल ने इसी प्रकार के विचारों को एक स्थल पर प्रस्तुत किया था।[२]

भारत की धर्मप्राण जनता प्रारम्भ से ही महान् व्यक्तित्वों के प्रति श्रद्धा-भावना और सम्मान के भाव प्रकट करती आ रही है। भारतीय धर्म का इतिहास भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि युग-युगों से महान् व्यक्तित्वों को इस देश की जनता ने 'मनसा, वाचा, कर्मणा' से पूज्य मानकर, उनका सम्मान किया है। युग-युगों से राम और कृष्ण जैसे दैवी चरित्र, गौतम बुद्ध जैसे मानवीय चरित भारतीय जनता को विविध तापों से संतप्त लौकिक जीवन को उन्नत और आदर्श तथा गतिशील बनाने के लिए प्रेरणा देते रहे है। इन महापुरुपो का व्यक्तित्व वहुर्मुखी था, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रकाश से पूर्ण करने में समर्थ था। भारत की पुनीत भूमि पर अनेक महान् आत्माएँ समय-समय पर अवतरित होती

---

१. The inspiration of biography as an instinctive desire to do honour to the memories of those who by character and exploits have distinguished themselves from the mass of their countrymen.

Sir Sidny Lee : Development of English Biography, p. 11-12

२. The history of mankind is the history of its great men, to find out these clean, the dirt from them, and place them on proper pedestal. Ibid, p. 11

रही हैं और उन्होंने जग-जीवन को आदर्शमय बनाने का प्रयास भी किया था। यह महान् व्यक्तित्व अनेक गुणों के समन्वित रूप के संघात हुआ करते थे। भगवान श्रीराम का चरित्र शील, शक्ति और सौन्दर्य का अगाध सागर है। भगवान श्रीराम का चरित्र भारतीय जनता का प्रिय और पूज्य व्यक्तित्व रहा है। राम का व्यक्तित्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, कुछ विशेष बातों को लेकर प्रस्फुटित हुआ है। इन महान् चरित्रों का गुणगान बहुत समय से होता चला आ रहा है। रामायण, रघुवंश, महाभारत आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं। भारतीय साहित्य में इस प्रकार के ग्रन्थों की कमी नहीं है। प्रत्येक युग में इस प्रकार के श्रद्धा और भक्ति-भावना से ओत-प्रोत ग्रन्थों की रचना हुआ करती है। इसी प्रकार के ग्रन्थों में जीवनी के तत्व निहित हैं।

हिन्दी साहित्य में जीवनी साहित्य का प्रवेश संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से हुआ। हिन्दी जीवनी साहित्य के तत्व इन्हीं समस्त भाषाओं से हिन्दी में आये थे। इन भाषाओं में जीवनी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया था। धार्मिकता और नैतिकता के दृष्टिकोण से भी इन भाषाओं में कुछ कहानियाँ लिखी गई जिन्हें जीवनी के ही क्षेत्र में रखा जा सकता है, अत्यन्त महत्वपूर्ण थीं।

भारतीय भाषाओं में जीवनी का वह उत्कर्ष नहीं दिखायी देता जो अपेक्षित था, इसका कारण है आत्मख्याति में अरुचि रखना। इस युग के पाश्चात्य तथा भारतीय लेखक (क्रोचे, गेटे, हीगल, टैगोर एवं प्रसाद) साहित्य को प्रधानतया आत्माभिव्यक्ति का एक प्रमुख साधन मानते आ रहे हैं। साहित्य में आत्माभिव्यक्ति का महत्त्व दो दृष्टियों से है। एक तो यह कि साहित्यकार साहित्य में अपने स्वरूप का अंकन कर स्वयं आनन्द प्राप्त करता है और दूसरे पाठक भी ऐसी रचना में आत्मानुभव प्राप्त कर आनन्दित होता है। आज का साहित्य-स्रष्टा साहित्य को केवल तटस्थ ज्ञान की अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं मानता, वरन् वह उसकी अनुभूतियों के प्रकाशन का एक माध्यम भी है। कवि प्रसाद के अनुसार साहित्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। टैगोर ने कहा है कि, "हृदय का जगत अपने को व्यक्त करने के लिए आकुल रहता है, इसीलिए चिरकाल से मनुष्य के भीतर साहित्य का वेग है। अपने को वह अनेक हृदयों में अनुभूत कराना चाहता है।" गेटे के अनुसार साहित्यकार की अन्तरात्मा की छाप ही उसकी शैली है। उदात्त शैली के हेतु उदात्त चरित्र अपेक्षित रहता है। हीगल ने आत्माभिव्यंजना को ही काव्य का मुख्य तत्व बताया है। इन समस्त विद्वानों के मतों का विवेचन

करने से ऐसा ज्ञात होता है कि साहित्य में आत्माभिव्यक्ति की व्यापकता और महत्ता सर्वमान्य तत्व हैं। किन्तु प्राचीन समय में साहित्यकारों के सम्मुख इस प्रकार का कोई प्रश्न ही नहीं था। हिन्दी साहित्य के भक्ति युगीन कवि आत्मा-भिव्यक्ति को निकृष्ट कार्य समझ कर सदैव अपनें विषय में मौन रहा करते थे। भारतेन्दु युग के पहले तक साहित्य में आत्म-विज्ञप्ति का नितान्त अभाव था। भक्त कवि अपने जीवन के समस्त प्रेम और श्रेय को भगवान के चरणों में अर्पित कर, भला आत्माभिव्यक्ति को क्या महत्त्व देते। 'रामचंरितमानस' और 'सूर-सागर' जैसे विशाल ग्रन्थों की रचना करने वाले सूरदास और तुलसीदास भी अपने विषय में मौन हैं। दुनिया भर को सब कुछ कह डालने वाले कबीर भी अपने विषय में चुप रह गए। इसका प्रमुख कारण है कि भारतीय साहित्यकारों की परम्परा के विरुद्ध यह बात थी कि वे अपने विषय में कुछ कहें। इस आत्म-विज्ञप्ति का अभाव केवल हिन्दी में ही नहीं दृष्टिगत होता है, अन्य भाषाओं जैसे पाली, प्राकृत आदि में भी इस प्रवृत्ति का अभाव है।

भारतीय दृष्टिकोण भौतिकता की अपेक्षा पारमार्थिक अधिक है। जीवन और जगत के विषय में भारतीय दृष्टिकोण सदैव से ही अभौतिक रहा है। यही कारण है कि इस देश के कवियों, साहित्यकारों को आत्म-परिचय में कोई आकर्षण न दीख पड़ा।

अब अन्य भाषाओं में भी जीवनी के स्वरूप का दर्शन कर लेना चाहिए। भारतीय साहित्य का प्रारम्भ वेदों से माना जाता है। हिन्दी का विकास संस्कृत से हुआ है। वेदों की वैदिक भाषा से संस्कृत का विकास, फिर संस्कृत से क्रमशः पाली, प्राकृत, अपभ्रंश और इस प्रकार संस्कृत का अन्तिम स्वरूप अपभ्रंश के माध्यम से हिन्दी के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

जीवनी के तत्व बीज रूप मे हमें वेदों में ही उपलब्ध हो जाते है। श्रीराम दास गौड़ ने 'हिन्दुत्व' में लिखा है कि :

"इस वेद को अथर्व नामक ऋषि ने देखा इसलिए इसका नाम अथर्ववेद पड़ा। श्री ग्रिफिथ ने अपने अंग्रेजी पद्यानुवाद की भूमिका मे लिखा है कि अथर्वन ऋषि एक अत्यन्त पुराने ऋषि का नाम है जिसके सम्बंध मे ऋग्वेद में लिखा है कि इसी ऋषि ने संघर्षण द्वारा अग्नि को प्रकट किया और पहले पहल यज्ञों के द्वारा वह मार्ग तैयार किया जिनसे कि मनुष्यों और देवताओं में सम्बन्ध स्थापित हो गया तथा ऋषि ने पारलौकिक और अलौकिक शक्तियों द्वारा विरोधी असुरों को वश में कर लिया। इसी अथर्वन ऋषि के अंगिरा और भृगु के वंश वालों

को जो मंत्र मिले उन्हीं की संहिता का नाम अथर्ववेद था, अथर्वांगिरस वेद पड़ा।"[१]

इस अवतरण के द्वारा अथर्वन ऋषि के चरित्र की झलक मात्र ही उपलब्ध हो पाती है। इस ऋषि को ब्रह्मा ने स्वयं ब्रह्मविद्या प्रदान की थी। इसका प्रसंग 'मुण्डकोपनिषद' में मिलता है।

"अथर्वणेयां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविधाम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥

मु० उ० १।२

अर्थात् अथर्वा ऋषि को जो ब्रह्मविद्या ब्रह्मा से मिली थी, वही ब्रह्मविद्या उन्होंने अंगी ऋषि को बतलायी थी और अंगी ने भरद्वाज गोत्र में उत्पन्न हुए सत्यवह नामक ऋषि को वही विद्या बतलायी। भारद्वाज ने परम्परा से चले आते हुए ब्रह्म के तथा अपर रूप को अंगिरा ऋषि से कहा था।

उपनिषदों में भी जीवनियाँ मिलती हैं। मरीचि, अंगिरस आदि महर्षियों का चरित्र पूर्णरूपेण अंकित है। तैत्तिरीयोपनिषद में भृगु ऋषि का जीवनचरित्र वर्णित है। भृगु वरुण के पुत्र थे। उनके मन में परमात्मा-विषयक ज्ञान को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा थी। इसी प्रकार के अनेक वृत्तान्त इन उपनिषदों में प्राप्त होते हैं।

अब संस्कृत साहित्य में उपलब्ध जीवनी-तत्वों पर विचार कर लेना चाहिए। संस्कृत साहित्य का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है 'रामायण'। 'रामायण' संस्कृत साहित्य का आदिकाव्य ग्रंथ कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ में राम के 'चरित' का वर्णन हुआ है। रामायण से कुछ स्थल उद्धृत किये जा रहे हैं :

(१) प्राप्त राजस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवान ऋषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्र पदमर्थवत ॥[२]

(२) चरितं रघुनाथस्य क्षत कोटि प्रविस्तरम्।[३]

राम के चरित्र को लेकर संस्कृत में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। इन समस्त काव्यों में राम का महापुरुषत्व प्रकट होता है। इन काव्यों में राम की जीवनी बड़े व्यापक रूप में वर्णित हुई है। युगों से राम के चरित्र की पावन गंगा में

१. हिन्दुत्व, पृ० ५१-५२
२. वही, पृ० १२९
३. वही, पृ० १२९

अवगाहन कर भारतीय जनता कल्याण के पथ पर अग्रसर हो रही है। भारत की अनेक भाषाओं मे रामकथा का वर्णन मिलता है।

रामायण के बाद जीवनी की दृष्टि से 'महाभारत' भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में कौरव और पांडवों के वर्णन में 'महाभारतकार' ने इन महापुरुषों के जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है। 'नैषधीयचरित', 'रघुवंश' आदि महाकाव्यों मे भी जीवनी के सूत्र प्राप्त होते है।

संस्कृत साहित्य के पश्चात् पाली साहित्य मे उपलब्ध जीवनी साहित्य पर विचार कर लेना आवश्यक है। पाली का लगभग समस्त साहित्य भगवान् बुद्ध के उपदेशों से भरा पडा है। पाली भाषा में बुद्ध के चरित्र का वर्णन बडी व्यापकता और कलात्मकता के साथ हुआ है। बुद्ध के चरित्र और उपदेशों को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन तीनों उपविभागों के मिले हुए रूप को 'त्रिपिटक' के नाम से पुकारा जाता है। इन तीनों विभागों के पृथक्-पृथक् नाम है :

'सुत्त पिटक, विनय पिटक, अभिधम्म पिटक।[1] पाली साहित्य के विद्वान् अभी तक प्रामाणिक रूप से इनका रचनाकाल निश्चित नही कर सके।[2] सुत्त पिटक पाँच (निकाय) वर्ग का संग्रह है।[3] सुत्त पिटक के पाँच निकाय इस

---

१. The Buddhist Pali scriptures contain three different collections the Sutta (Containing doctrines) the Vinaya (Relating to the discipline of the monks), and the Abhidhamma (relating generally to the same subjects as the Suttas but dealing with them in a scholastic and technical manner).

Dr. S. N. Das Gupta: A History of Indian Philosophy, Vol. I, Ed. 1951, p.82

२. Scholars of Buddhistic religious history of modern times have failed as yet to fix any definite dates for the collection or composition of the different parts of the aforesaid canonical literature of the Buddhists.

Ibid

३. The Suttas contain five groups of collection called Nikayas. These are (i) Digha Nikaya, (ii) Majjhim

प्रकार हैं : (१) दीघ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुत्त निकाय, (४) अंगुत्तर निकाय और (५) खुद्दक निकाय ।

विनय पिटक के प्रमुख तीन भाग हैं (१) सुत्त विभंग (२) खन्दक (३) परिवार ।

अभिधम्म पिटक के सात प्रमुख अंग हैं : (१) धम्म सगणि, (२) विभंग, (३) धातु कथा, (४) पुग्गल पंञति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान ।

इस समस्त साहित्य में बुद्ध के चरित्र के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है । बुद्ध के चरित्र के साथ-साथ उनके शिष्यों के चरित्रों का भी पर्याप्त विवरण उपलब्ध होता है । 'थेरगाथा' और 'थेरीगाथा' में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है ।

'दीघ निकाय' 'सामञ्ञ फल सुत्त (दीघ १।२) में पिता के वध होने के बाद अजातशत्रु पश्चात्ताप से संतप्त शांति प्राप्त करने के हेतु भगवान बुद्ध के पास जाता है । भगवान बुद्ध और अजातशत्रु के वार्तालाप के मध्य दोनों के चरित्र प्रकाश में आते हैं ।[1] इसी प्रकार 'दीघ निकाय' के 'अम्बट्ठ सुत्त (दीघसु १/२) में पौष्कर साति नामक ब्राह्मण के अम्बष्ट नामक शिष्य का चरित्र भी संवाद प्रकरण में पूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है ।[2]

'महावग्ग' के 'महापदान सुत्त' (दीर्घ २।१) में बुद्ध के छह पूर्ववर्ती बुद्धों यथा विपस्सी (विपश्यी), सिखी (शिखी), वेस्सभू (विश्वभू), भद्रकप्ल, ककुसन्ध (ककुच्छन्द) और कोणागमन की जीवनियों का वर्णन है । इनमें ऐतिहासिक तत्व कुछ भी नहीं है । किन्तु जीवनी के तत्व उपलब्ध होते हैं ।[3]

'महापरिनिब्बाण सुत्त' (दीघ ३।२) में भगवान बुद्ध के अंतिम दिनों का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है । इन प्रसंगों में जीवनी के समस्त तत्व अपने निखरे हुए रूप में प्रकाश में आते हैं ।[4]

समस्त पालि साहित्य में जीवनियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं । अतः पालि साहित्य में अन्य साहित्यों की अपेक्षा जीवनियों का बाहुल्य रहा है । पालि

Nikaya, (iii) Sanyutta Nikaya. (iv) Anguttara Nikaya, (v) Khuddaka Nikaya. Ibid

१. भरत सिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृ० १३७

२. वही, पृ० १३८ ३. वही, पृ० १४३ ४. वही, पृ० १४४

साहित्य की जीवनियों के आधार पर ही जीवनी साहित्य का विकास विदेशों मे भी हुआ था।[1]

महावीर स्वामी ने अपने उपदेशों के प्रचार के लिए अपभ्रंश को माध्यम वनाया था। महावीर स्वामी तथा अन्य जैन तीर्थकरों के चरित्रो का विवरण अपभ्रंश-साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है। जैन वाङमय के निम्नलिखित प्रमुख भाग है :

(१) द्रव्यानुयोग (२) गणितानुयोग

(३) चरणकरणानुयोग (४) धर्म कथानुयोग

उपर्युक्त भागों मे चतुर्थ मे कथा और चरित्रों का वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त प्रद्युम्न चरित, पउम चरित आदि प्रसिद्ध ग्रंथों में भी जीवनी की अभिव्यक्ति हुई है। जीवनी-साहित्य के विकास मे जैन साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

हिन्दी जीवनी साहित्य (उत्तरार्ध)

हिन्दी साहित्य की धारा चिरकाल से अवाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। हिन्दी का विकास अपभ्रंश भाषा से हुआ है। उसी प्रकार जिस प्रकार कि अपभ्रंश का प्राकृत से, प्राकृत का पाली से और पालि का संस्कृत से विकास हुआ है। इस प्रकार हिन्दी भाषा उन समस्त वोलियों की उत्तराधिकारिणी कही जा सकती है जो अपभ्रंशकाल की समाप्ति पर जन भाषा के रूप में अपनी स्वतन्त्र सत्ता निर्धारित करने के लिए प्रयत्नशील हो गई थी। साधारणतः 'भ्रष्ट हुई भाषा' को ही अपभ्रंश कहा जा सकता है। जव भाषा पर व्याकरणिक रूपो को लादकर उसे क्लिष्ट वना दिया जाता है, तो सामान्य जनता सरलता के अनुसार उसी भाषा के आधार पर अपनी एक वोल-चाल की भाषा निर्मित कर लेती है। प्राकृत के साथ भी यही वात लागू होती है। आवश्यकता के अनुसार जव जनता ने प्राकृत के स्वरूप को विकृत कर दिया, तव उसी क्षण सम्भवतः अपभ्रंश भाषा का जन्म हुआ होगा। अपभ्रंश का विकास सम्भवतः ईसा की दूसरी शताब्दी मे हुआ होगा। अपभ्रंश भाषा का जन्म पश्चिम मे हुआ, वही पली और वही पुष्पित भी हुई। जैन आचार्यों ने इसी भाषा के माध्यम से अपने उपदेशो को जनता तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। जितना भी साहित्य आज अपभ्रंश मे उपलब्ध है, उसका श्रेय जैन आचार्यों

---

१. भरत सिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, पृ० ३२०

और आभीरों को है जिन्होंने इस भाषा को हृदय से लगाकर इसका सत्कार किया। अपभ्रंश पहले एक जन भापा के रूप मे ही सम्मुख आयी, किन्तु छठी शताब्दी मे इसे साहित्यिक भापा का पद प्राप्त हो गया। अपभ्रंश का प्रयोग सिंध और पंजाब में अधिक होता था। इस भापा का अस्तित्व १२वीं शताब्दी तक मानना चाहिए। अपभ्रंश भापा को राजाश्रय भी मिला जिससे यह उन्नति के शिखर पर पहुँच गई। अपभ्रंश का रिक्त भंडार, राज्य भापा होते ही भर गया।

भापाओं का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने अपने जीवन-काल मे अनेक भापाओं की उन्नति और अवनति देखी है। विक्रम की आठवी शताब्दी के प्रारम्भ में अपभ्रंश के रूप में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। इसी समय से अन्य भाषाएँ भी अपने स्वरूप को निर्धारित करने के लिए जागरूक होने लगी। इन भाषाओं के स्वरूप निर्धारण के मूल में भी जन-रुचि और सरलता, इन दोनों तत्वों का प्राधान्य था। शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी, नागर अपभ्रंश से राजस्थानी, मागधी से विहारी और बंगाली आदि भापाएँ प्रस्फुटित हुई।

अतः इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के विविध रूपों का विकास अपभ्रंश भापा के भग्नावशेषों से ही हुआ है। इसके पूर्व संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में जीवनी के विकास पर विचार हो चुका है। अब हिन्दी में जीवनी साहित्य पर विचार करना है।

संधिकाल के समाप्त होते ही चारणकाल का प्रारम्भ होता है। चारणकाल का समय संवत् १००० से १३७५ तक माना जाता है। सर्वप्रथम हमें चारण-काल की परिस्थितियो पर विचार कर लेना आवश्यक है। सातवीं शताब्दी के समाप्त होते ही हिन्दू-राज्यों की सत्ता भी समाप्त होने लगी थी। आपस में संघर्प बराबर चल रहा था। विदेशी आक्रमणकारियों को इससे लाभ हुआ। परिणामस्वरूप १२वी शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते लगभग उत्तरी भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। यह शताब्दी भारत के प्राचीन गौरव एवं वैभव के इतिहास का अंतिम समय था। इस युग में शक्ति का अभाव और विवशता सर्वत्र देख पड़ती थी। इस समय का इतिहास अनेक छोटे-छोटे राज्यों के उत्थान और पतन की करुण कहानी थी। ये विनाश की दिशा मे अग्रसर होते हुए राज्य छोटी-छोटी बातों पर प्रायः झगड़ते रहते थे। आठवीं शताब्दी में काश्मीर और कन्नौज में परस्पर खूब संघर्प हो चुका था। देवपाल

और विजयपाल के समय में ही कन्नौज का अधःपतन हो चुका था। गुजरात भी हिन्दुओं का एक महत्त्वपूर्ण राज्य था। गुजरात इस समय धन और वैभव का केन्द्र था, कारण कि अन्य राज्यों की अपेक्षा गुजरात की व्यापारिक स्थिति अत्यन्त संतोषजनक थी। गुजरात के शासक भीमदेव के समय (१०७९-११२०) में ही महमूद गज़नवी का आक्रमण सोमनाथ के मंदिर पर हुआ था। इसी शासक के राज्यकाल में कई बार गुजरात की समृद्धि विनष्ट हुई थी। भीमदेव के बाद सिद्धराज राजा हुआ जो संघर्षों में ही लगा रहा और अंत में अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा संवत् १३५५ में यह राज्य नष्ट कर दिया गया। १२वीं शताब्दी में सोलंकियों के द्वारा पँवारों का राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। संवत् १२३८ में चंदेलों का वैभव पृथ्वीराज के साथ-साथ समाप्त हो गया और संवत् १२५० तक कालिंजर भी मुसलमान सम्राटों के हाथ में पहुँच गया। १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते तोमर, चौहान, गहलोत, आदि वंशों का वैभव विनष्ट हो चुका था। इस युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ बड़ी अनिश्चित थीं। पारस्परिक कलह ने उनकी प्रगति को बिल्कुल रोक दिया था। राजस्थान में स्वदेशाभिमान की मात्रा चौहान वंश के कारण विशेष बढ़ी और राजनीति में राजा के साथ प्रजा ने भी साभिमान भाग लिया। इसीलिए राजा का यश गाने वाले चारण आदि राजदरबार में जाकर वीरों को अपनी ओजस्विनी कविता से प्रोत्साहित कर स्वयं भी लड़ते थे। ऐसे चारणों की रचनाएँ घर-घर गायी जाती थीं। वे जिस उत्साह से लिखी जाती थीं, वह चारणों का स्वाभाविक उद्गार होता था। वे बड़े ओज और गर्व से वीररस से ओत-प्रोत अपनी रचनाएँ सुनाते थे।"[1] इन वीरों के यशोगान में उनके चरित के अनेक पक्ष प्रकाश में आ जाते थे। चारणों द्वारा निर्मित इस प्रकार के साहित्य का प्रमुख ध्येय था, वीरों के जीवनवृत्त और अन्य विशेष गुणों का प्रकाश में आना। स्पष्ट है कि इस युग में जो वीर प्रशस्तियाँ बनीं उनमें अनेक वीरों के जीवन चरित्र वर्णित हैं। इन वीरों की गाथाओं में जीवनी-साहित्य के लगभग समस्त महत्त्वपूर्ण तत्व विद्यमान हैं। वीरगाथा अथवा चारणकाल में निम्नलिखित जीवनी ग्रंथों की रचना हुई थी :

(१) खुमान रासो, ले० दलपति विजय संवत् ८८७

(२) वीसलदेव रासो, नरपति नाल्ह संवत् १३ शताब्दी

---

१. डा० राम कुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० १०३

(३) पृथ्वीराज रासो, चन्दबरदाई १२४९ वि०
(४) पृथ्वीराज विजय, जयानक संवत् १२३५-१२५७
(५) जयचन्द्र प्रकाश, भट्ट केदार संवत १२२५ वि०
(६) जय मयंक जस चंद्रिका, मधुकर संवत् १२४०
(७) आल्हखंड, जगनिक संवत् १२३०
(८) हम्मीर रासो, सारंगधर संवत् १२५७

इस सूची से स्पष्ट हो जाता है कि चारणकाल में वीरों के यशोगान के लिए अनेक परिचयात्मक ग्रंथों की रचना हुई थी। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं जिनमें नायक अथवा नायिका के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है :

(१) अचलदास खीची री वचनिका शिवदास री कही
(२) महाराज गजसिंह जी री रूपक
(३) गोरा बादल री बात
(४) राव छत्रसाल रा दूहा
(५) वृत्त रत्नाकर आदि

इन ग्रंथों में वीरों के चरित्र के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इन कवियों की दृष्टि चरित्रनायक के गुणों की ओर अधिक गयी है। कुछ भी हो, जीवनी के दृष्टिकोण से ये ग्रंथ महत्त्व के हैं।

वीरगाथा काल के समाप्त होते ही साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन परिवर्तन दिखायी पड़ने लगा। वीर हिन्दू राजाओं की सत्ता के साथ-साथ वीर प्रशस्तियाँ भी समाप्त हो चुकी थीं। मुसलमानी तलवारों के सम्मुख अनेक हिन्दू सम्राट घुटने टेक चुके थे। फलतः चारणों को आश्रय देने वाला अब कोई नहीं रह गया था। अब हिन्दू राजाओं के पास न बल था और न साहस ही। यवन शासक अलाउद्दीन ने समस्त उत्तरी भारत पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। देश में सर्वत्र उच्छृंखलता का साम्राज्य था। हिन्दू सम्राटों में किसी प्रकार का एका न था और न उनमें अब वह धैर्य रह गया था जिससे वे मुस्लिम सम्राटों का विरोध करते। मूर्ति खंडित होते देखकर हिन्दुओं के हृदय से मूर्ति-पूजा की भावना का भी तिरोभाव धीरे-धीरे हो रहा था, कारण कि मूर्ति-भंजक यवन बराबर सुख और चैन की जिन्दगी व्यतीत कर रहे थे। फिर भी उन्हें ईश्वर की शक्ति पर पूरा भरोसा था। हिन्दुओं के भग्न होते हुए हृदय को सांत्वना

देने वाला भी इस समय कोई नहीं था। भगवान भी अब भक्तों की ओर ध्यान दिखायी देते न थे। वीरता का तिरोभाव होकर, अब भक्ति और विजय के रूप में प्रस्फुटित हो रही थी। मुस्लिमों के अत्याचारों से हिन्दुओं के हृदय में भगवान के प्रति अखंड विश्वास का जागृत होना स्वाभाविक ही था। धीरे-धीरे तलवार के रिक्त स्थान को माला और भक्तों की खंजरी ने पूर्ण किया। इस प्रकार हिन्दू जाति के लिए केवल एक निर्बल का बल भगवान का नाम ही रह गया था। "काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं।"[1] अतः इस युग में अनेक महात्मा (भक्तिकाल में) अवतरित हुए जिन्होंने हिन्दुओं के भग्न हृदय को सँभाला और उन्हे भक्ति-मार्ग पर अग्रसर होने का उपदेश किया। इस प्रकार सं० १३७५ से भक्तिकाल का प्रारम्भ होता है।

भक्ति की धारा चार प्रवाहों में बह निकली। संत काव्यधारा, प्रेमकाव्य धारा, रामकाव्य धारा और कृष्णकाव्य धारा। इन चारों धाराओं के पवित्र गंगाजल सदृश साहित्य में अवगाहन कर भारतीय जनता शांति का अनुभव करने लगी। इस युग के तीन सौ वर्षों मे कबीर, तुलसी, सूर, मीरां जैसी महान् विभूतियाँ उत्पन्न हुईं जिनकी रचनाओं से हिन्दी साहित्य धन्य और धनी बना। इन महान् विभूतियों के चरित्रों ने न केवल देश, जाति को ही प्रभावित किया वरन् समस्त मानवता को एक नवीन आदर्शमय मार्ग भी दिखाया। इन भक्त कवियों के उज्वल चरित्र और कल्याणकारी संदेशों से प्रभावित इनके शिष्यों, अनुयायियों ने इनके व्यक्तित्व को समाज के सम्मुख 'जनहिताय' की भावना से रखा। संतों के जीवनचरित समय-समय पर लिखे गए जो 'परिचयी' के नाम से विख्यात हुए। संत कवियों की 'परिचयी' मुख्य-मुख्य निम्नलिखित है:

(१) कबीर जी की परचै
(२) पीपा जी की परचई
(३) नामदेव जी की परचै
(४) सेऊ समन की परची
(५) त्रिलोचन की परचई
(६) गोपीचन्द की परचई
(७) भरथरी की परचई
(८) रैदास की परचई

---

१. डा० श्याम सुन्दरदास : कबीर ग्रंथावली, भूमिका, पृ० १

कवि नाभादास के जीवनी-लेखन के दृष्टिकोण मे अन्तर था। चारण-काल के कवियो की भाँति कवि नाभादास ने अपने को प्रशसा तक ही सीमित नही रखा। कहने का अभिप्राय यह है कि नाभादास ने यथातथ्य भक्तो की प्रशसा की है। समस्त भक्तो के प्रति कवि के हृदय मे समान श्रद्धा और भक्ति थी। कवि ने 'नर-चरित' का गान न करके भक्तो के उज्वल, निष्कलक चरित्रो का ही वर्णन किया है। दूसरा अन्तर यह है कि 'भक्तमाल' मे भक्तो के जीवन का सागोपाग वर्णन नही किया गया। नाभादास ने भक्त का नाम वताकर उसके जीवन की किसी घटना के वर्णन तक ही अपने को सीमित रखा है। सम्भवत कवि का उद्देश्य यह न रहा हो कि भक्तो के जीवन का सागोपाग वर्णन किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि नाभादास ने भक्तो के प्रति श्रद्धा और सम्मान की श्रद्धाजलि अर्पित की है। कुछ भी हो, इतना तो मानना ही पडेगा कि कवि ने 'भक्तमाल' के द्वारा लगभग २०० भक्तो के जीवन पर प्रकाश डाला है।

हेराल्ड निकल्सन ने जीवनी के दो रूप माने है विशुद्ध और अशुद्ध जीवनी। कवि ने विशुद्ध जीवनी नही लिखी। कारण कि 'भक्तमाल' मे न तो ऐतिहासिकता का अधिक ध्यान दिया गया है और न क्रमवद्धता पर ही। कवि ने भावुकता के माध्यम से भक्तो का वर्णन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस ग्रथ का अपना महत्त्व है। डा० दीन दयालु गुप्त ने कहा है कि, "नाभादास जी ने जो वृत्तान्त इस ग्रथ मे दिये है, वे वहुत अपूर्ण और केवल भक्तो की महिमा-सूचक है, फिर भी हिन्दी के भक्त कवियो का जो कुछ भी वृत्तान्त इस ग्रथ मे दिया हुआ है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से वहुत महत्त्वपूर्ण है।"[1] 'भक्तमाल' मे 'कलियुग' के भक्तो के वर्णन मे कवि ने क्रमवद्धता का कोई विशेष ध्यान नही रखा। हो सकता है कि ज्यो-ज्यो कवि को भक्त याद आते गए हो वह छप्पय वनाकर भक्तमाल मे रखता गया हो। इसका आधार भी है।" भक्तमाल रूपी रत्न को स्वय नारायण दास (नाभादास) जी ने गोविन्द नामक भक्त को कठस्थ करा दिया और गोविन्द भक्तमाली का वर्णन 'भक्तमाल' मे लिखा है।[2] हो सकता है कि जव यह ग्रथ अधिक लोकप्रिय हुआ हो तो कुछ छप्पय समय-समय पर वढा दिए गय हो। नाभादास द्वारा लिखित 'भक्तमाल' मे जितनी जीवनिया

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १०९

२. गोविन्द 'भक्तमाली' के सम्बंध में 'भक्तमाल' में लिखा है कि

'भक्त रत्नमाल' सुधन गोविन्द कंठ विकास किया।

रुचिर सीलघन नील लील रुचि, सुमति सरितपति।

हैं उनमें अशुद्ध, विशुद्ध जीवनी के कुछ न कुछ तत्त्व अवश्य मिलते हैं।

भक्तों की जीवनी के अतिरिक्त इसके रचयिता ने भक्तों का संक्षेप में व्यक्तित्व-दर्शन भी देने का प्रयास किया है। नाभादास ने कुछ भक्तों के अलौकिक और चमत्कारपूर्ण कृत्यों का भी वर्णन किया है। ऐसे वर्णनों के माध्यम से कवि चाहता था कि भक्तों के चरित्रों का तात्कालिक प्रभाव जनता पर पड़े। अब कुछ भक्तों के चामत्कारिक कृत्यों का उल्लेख भी करना आवश्यक है। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' के अनुसार पयोहारी जी ने आग की धूनी को अपनी लंगोटी में उठा लिया था, योगियों के महन्त का गधा बना दिया था और उनके प्रभाव से योगियों की मुद्राएँ अपने आप निकल कर पयोहारी जी के समक्ष एकत्र हो गई थी।"[1] कील्ह देव के विषय मे नाभादास जी ने लिखा है कि, "उन्होने 'भीष्म पितामह' की भाँति ही मृत्यु को स्ववश में कर लिया था।"[2] नाभादास ने अन्य भक्तों के विषय में भी कुछ इसी प्रकार की घटनाओं का उल्लेख किया है।

जीवनी के तत्वों में लगभग सभी तत्व 'भक्तमाल' की संक्षिप्त जीवनियों मे उपलब्ध होते है। कवि (नाभादास) ने विशेष भक्तों के चरित्रो का ही उल्लेख किया है, व्यक्तित्व अंकन में कवि कल्पना का सहारा नही लेता, इसका प्रमाण यह है कि 'भक्तमाल' मे वर्णित चरित्र लगभग सभी ऐतिहासिक है। कहने का अभिप्राय यह है कि जिस भक्त का जैसा स्वरूप था, नाभादास ने वैसा ही उसे दिखा दिया। अधिकांश में कवि ने भक्तों के जीवन का यथार्थ चित्रण ही किया है।

'भक्तमाल' भक्तों के चरित्रों से सम्बद्ध एक ऐसा ग्रंथ है जिसके द्वारा जिज्ञासु अन्वेषकों का पथ-प्रदर्शन होता है। नाभादास को अपने उद्देश्य मे पूर्ण सफलता मिली। जनता के मध्य इन भक्तो का आदर दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा।

विविध भक्त अनुरक्त व्यक्त, बहु चरित चतुर अति।
लघु दीरघ सुर सुद्ध वचन अविरुद्धि उचारन।"

१. डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव : रामानन्द सम्प्रदाय में योग, पृ० ७९
(आलोचना)

२. वही, पृ० ८०

सप्तम परिच्छेद

काव्य-कला के दृष्टिकोण से भक्तमाल का मूल्यांकन

काव्य का उद्‌गम

मनुष्य का हृदय अनेक भावनाओं, विचार-धाराओं और अनुभूतियों का केन्द्र हुआ करता है। वह अपने व्यक्तित्व को अपने तक ही सीमित न रखकर दूसरों पर प्रकट करने का अभिलाषी, इच्छुक रहा करता है। अपने सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि को वह दूसरों तक पहुँचाकर, उन्हें भी उसी स्थिति का अनुभव कराने के लिए सतत प्रयत्नशील दृष्टिगत होता है। अपने को बताने और दूसरे के प्रति जानने का सुखद मोह मनुष्य त्याग नहीं सकता। हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त कर, दूसरे तक अपने अनुभव को पहुँचाकर, उसे आनन्दित करना ही काव्य की जननी है।[1] मानस में उठे हुए अनुभूतियों के तूफान को जब मनुष्य रोक नहीं पाता, तभी वह प्रबल प्रवेग, शब्दों के माध्यम से हमारे सम्मुख काव्य के रूप में आ उपस्थित होता है। चन्द्र की सुरम्य ज्योत्स्ना में, बालारुण की विकासोन्मुख प्रभा में, विद्युत की दमक में, प्रकृति के दिव्य क्रोड़ में, विचरते हुए कवि के हृदय में मनोहारी काव्य स्वतः अपने रूप का निर्माण कर लेता है। किन्तु कवि अथवा महाकवि इस भावोद्रेक के वैज्ञानिक कारण बताने में असमर्थ है।

मनुष्य के हृदय में विकल क्रंदन और आनन्द का स्वर उसके जीवन के प्रथम काल से ही गुंजारित होता रहता है। उसका जीवन विविध प्रकार के अनुभवों का केन्द्र स्थल है। "उसके जीवन का सौन्दर्य अतीव वैचित्र्यपूर्ण है। उसके हृदय में हीं। गति ही भावों के इन्द्रधनुष बना और मिटा करते हैं। उसके मानस में भावों एवं मनोवेगों के ज्वार-भाटा का उत्थान-पतन होता ही रहता है। हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दुःख, वैभव-दरिद्रता आदि के जीवित

---

१. अरस्तू : पोयटिक्स

इतिहास का नाम ही मानव-जीवन है। जीवन आनन्द और विषाद की ही अनुभूति है। कवि इस विशाल संसार के रंगमंच का अमर गायक है। काव्य हमारे हृदय की श्वास है।"[1] कवि हृदय में उठे हुए भावों की तीव्रता और गहनता को रोक नहीं पाता। वह अपने चारों ओर फैले हुए वातावरण में अनेक दृश्य देखता है, दृश्यों के अवलोकन के परिणामस्वरूप उद्भूत अनुभूतियों का व्यक्तीकरण ही काव्य है। सुख अथवा दुःख की व्यापक अनुभूति भूमि पर ही काव्य जगत का निर्माण होता है। क्रौंच पक्षी के मृतक शरीर को देखकर, दुःखातिरेक में अनायास ही आदि कवि वाल्मीकि के मुख से निम्नलिखित पंक्तियाँ आदि काव्य के रूप में प्रस्फुटित हुई थीं :

"मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वम गमः शाश्वतीः समाः"

मानव-अपने करुण दुःखमय इतिहास को जानकर, समझ कर, दूसरों को भलीभाँति इसका रहस्य समझाना चाहता है। अपनी अनुभूतियों के माध्यम से, वह (मनुष्य, कवि) अपने अनुभव को साकार रूप प्रदान कर, काव्य के रूप में हमारे सम्मुख रखता है। आदि कवि के उद्‌गारों के पीछे भी यही दुःखानुभूति कार्य करती दीख पड़ती है। यही कारण है कि युग-युगों से मनुष्य अपनी कहानी को काव्य के माध्यम से गाता चला आ रहा है।

मनुष्य स्वयं एक सजीव कविता है। महादेवी जी के शब्दों में, "वह (मानव) एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और, इस संसार से अधिक सुन्दर, सुकुमार संसार बसा रखा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं, उसका बाह्याकार पार्थिव अथवा सीमित संसार का भाग है और अन्तस्थल अपार्थिव असीम का। एक उसको विश्व में बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है। जड़ चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड़ के बिना आकार शून्य है। इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है।"[2] कवि अपने हृदय की अनुभूतियों को व्यक्त करते समय कल्पना का भी सहारा लेता है और तभी काव्य, अपने में आनन्द को समावेशित कर हमारे सम्मुख आता है। काव्य के क्षेत्र में तर्क प्रवेश नहीं पा सकता, कारण कि वह हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं।

काव्य स्वयं उत्पन्न होता है। उसकी सृष्टि के लिए किसी प्रकार के परिश्रम

---

१. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत दर्शन, पृ० २४३-४४

२. रश्मि—अपनी बात

की आवश्यकता नहीं। वह स्वतः निर्झर के समान हृदय से फूट निकलती है। अनुभूतियों की गहनता और व्यापकता का प्रस्फुटित रूप ही कविता है। कोमल एवं सुखद भावनाओं के सुमधुर संस्पर्श से, अनुभूति से जाग्रत हो अथवा चौंककर अंतस के अन्तर्गत अव्यक्त अहम् जब अपने परिज्ञापन के हेतु व्याकुल या व्यग्र हो उठता है तभी तो मानव कवि बन बैठता है। अतएव पीड़ाओं के पर्दे में सन्निहित रहने वाला मानव का 'अहम्' जब परिज्ञापन के लिए व्याकुल हो उठता है तभी वह कवि बन जाता है। सुमित्रानन्दन पंत ने कहा है कि :

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।"

रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य की प्रेरक मनोवृत्तियों में से निम्नलिखित को प्रमुख माना है[1] :

१. आत्माभिव्यंजना
२. सौंदर्यप्रियता
३. वह वृत्ति जिसके कारण मन कोमलता, मधुरता आदि की ओर झुकता है।
४. कौतुक-प्रियता

यह समस्त विश्व उस ब्रह्म की अभिव्यक्ति है और काव्य हमारी अनुभूतियों की। हमारी अनुभूतियाँ अंतस में विह्वल होने पर स्वरूप धारण के लिए व्यग्र हो उठती हैं और काव्य के रूप में प्रकट हो जाती है। एक पाश्चात्य विद्वान ने काव्य की उत्पत्ति के दो प्रमुख कारण माने है (क) बचपन से अनुकरण की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वभावतः होती है। काव्य अनुकरण का एक विशिष्ट रूप है। हम सूर्य की लाली देखते है और उसका वर्णन कल्पना का सहारा लेकर कर देते हैं। (ख) तत्वज्ञानी अपने आनन्द की वृद्धि के लिए काव्य की सर्जना करते हैं।[2]

काव्य क्या है

कविता की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार है :

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यादर्श, पृ० २, ३
२. अरस्तू : पोयटिक्स, पृ० ९

(१) वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्[1]

(२) रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्[2]

इन परिभाषाओं में संस्कृत के विद्वान आचार्यों ने रस और रमणीय अर्थ के प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य का अनिवार्य तत्व माना है।

(३) संगीतपूर्ण विचार का नाम काव्य है[3]

(४) सौंदर्य की लय-पूर्ण सृष्टि काव्य है[4]

इन उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानों ने सौंदर्य के व्यक्तीकरण के माध्यम को काव्य माना है।

(५) कविता जीवन और जगत की अभिव्यक्ति है[5]

जैसा कि 'भक्तमाल' के नाम से ही विदित होता है, यह ग्रंथ भक्त चरित्रों की एक शृंखला-सदृश है जिसमें अनेक भक्तों के चरित्र ग्रंथ दिये गए है। देवी और मानवीय, काल्पनिक एवं अस्तित्व रखने वाले सभी प्रकार के चरित्र 'भक्त माल' में वर्णित हैं। "भक्तों की जीवनी में कुछ न कुछ चमत्कार का उल्लेख करना एक नियमित प्रथा-सी हो गई है और वस्तुतः भक्त जीवन में चामत्कारिक घटनाओं का होना आश्चर्य भी नहीं है।[6] नाभादास ने भी 'भक्तमाल' में जिन चरित्रों का उल्लेख किया है उनमें यत्र तत्र चामत्कारिक विवरण मिल ही जाते हैं।

नाभादास के कवित्व का उद्देश्य भक्तों का गुणगान करना था। वे भक्त चरित्रों के गुणगान को भव-बंधनों के विनाश का सुलभ और सरल उपाय समझते थे। नाभादास की दृष्टि में भक्त इस विश्व में उस परब्रह्म के अवतार सदृश थे जिसकी पूजा-अर्चना में जड़ और चेतन, दोनों ही तत्पर हैं। नाभादास का उद्देश्य था जनता के मध्य भक्ति-भावना का प्रसार। यही कारण है कि उन्होंने काव्य को केवल अलंकारों तक ही सीमित नहीं रखा। जिन भावों के व्यक्तीकरण के लिए कवि नाभादास ने काव्य को माध्यम बनाया था उसमें

१. विश्वनाथ : साहित्य दर्पण

२. पंडितराज जगन्नाथ : रस गंगाधर

३. ड्राइडन द्वारा प्रतिपादित वाक्य

"Poetry is articulate music"—Drydon

४. एडगर ऐलेनपो द्वारा प्रतिपादित वाक्य

५. रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित वाक्य

६. कल्याण भक्त चरितांक, पृ० ८०७

उन्हे पूर्णतया सफलता मिली। रीति-कालीन कवियो की भाँति उन्होने अलंकारो की दमक से अपने काव्य पर रंग चढाने का प्रयास नही किया, वरन् जो स्वतः आ गए, उन्ही तक अपने को सीमित रखा। यथार्थ में कवि का ध्येय काव्य मे अलकारो की झडी लगाना नही था, वह तो साधारण भाषा के माध्यम से जन जीवन मे अपना सदेश पहुँचाने का इच्छुक था। इस दिशा मे कवि की पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई। नाभादास के द्वारा वर्णित चरित्रो मे समाज-कल्याण के तत्व निहित है, मानव समाज के प्रभावित करने की शक्ति है और है मानवता को सन्मार्ग पर लाने का तथा भक्ति के सहारे भगवान तक पहुँचने का एक उदात्त सदेश।

नाभादास की काव्य-दृष्टि को भली भाँति समझने के लिए उनके 'भक्तमाल' को निम्नलिखित कुछ प्रमुख शीर्षको मे विभाजित कर लेना अधिक उपयुक्त होगा —

(क) भाव-प्रकाशन
(ख) अभिव्यजना शक्ति
(ग) कल्पना की उत्कर्ष
(घ) रस परिपाक
(च) चरित्र चित्रण की शक्ति
(छ) रचना-शैली

हिन्दी सतों और भक्तो का काव्यादर्श है, काव्य के माध्यम से उपदेश देना अथवा जनता तक जन-कल्याण का सदेश पहुँचाना। इन भक्त कवियो को कवि कहने की अपेक्षा यदि मानवता का अग्रदूत अथवा सुधारक कहा जाय तो अधिक उचित होगा। कारण कि इन भक्त और संत कवियो का ध्येय केवल कविता करना न था, वरन् कविता को वे अपने उपदेश का माध्यम मानते थे।

काव्य और संगीत का घनिष्ट सम्बध है। दोनो ही हमारी रागात्मिका वृत्ति से सम्बद्ध है। काव्य मे स्वत. संगीत-तत्व आकर, उसे प्रभावशाली बना देता है। मानव ही क्या, वन के पशु-पक्षी भी संगीत लहरी मे उन्मत्त हो अपने जीवन तक को खो बैठते है। यही कारण है कि गद्य की अपेक्षा पद्य का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर अधिक प्रभाव डालता है। यही कारण है कि भक्त कवियो ने अपने उपदेश को काव्य के माध्यम से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने के कारण उन संतो और भक्तो के उपदेशों को स्थायित्व प्राप्त हो गया।

भक्त कवियों के काव्य में कला-पक्ष की अपेक्षा हृदय पक्ष की प्रधानता है। इसका प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि वे कला-पक्ष को काव्य में प्रमुख स्थान देकर अपने पांडित्य का प्रकाशन नहीं चाहते थे। ये भक्त कवि स्वभावतः आत्म-प्रशंसा और आत्म-ख्याति में अरुचि रखते थे। नाभादास के काव्य में उनका भक्त-हृदय सर्वत्र दिखायी पड़ता है। उन्होंने अपने भावों को सरल भाषा के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि का ध्यान अलंकारों की अपेक्षा भावाभिव्यंजना पर अधिक केन्द्रित हुआ है। यद्यपि कला-पक्ष (अलंकार आदि) का स्थान नाभादास के काव्य में गौण है, तथापि काव्य की महत्ता और प्रभाव में किसी प्रकार की कमी नही आने पाई। वास्तव मे भावों की स्वाभाविकता ही काव्य में जीवन डालने का कार्य करती है। जो कवि हृदय में उठे हुए भावों का यथा-तथ्य प्रकाशन न करके, केवल अलंकार आदि मे ही व्यस्त रहते हैं, उनका काव्य स्वाभाविकता से दूर जाकर, केवल कल्पना के क्षेत्र तक ही सीमित रह जाता हैं, उसमे प्रभावोत्पादकता का अभाव खटकने लगता है। रीति काल के कवि अलंकारों की चमक-दमक मे अपनी प्रतिभा का सदुपयोग न कर सके, अन्यथा उस युग का साहित्य हिन्दी साहित्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता।

नाभादास के 'भक्तमाल' मे उनके पवित्र भक्त-हृदय के दर्शन सर्वत्र होते है। प्रत्येक भक्त के चरित्र के वर्णन को पढ़ने के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि नाभादास ने अपने हृदय की उदात्त-भावनाओं को इन भक्तों के चरणों में श्रद्धांजलि रूप में अर्पित किया है। कवि की निम्नलिखित पंक्तियों से उसके हृदय की यथार्थ भावनाओ का स्वरूप आँका जा सकता है। भक्त कमलाकर भट्ट की प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि कमलाकर जी मानो सम्प्रदाय के दूसरे मध्वाचार्य के रूप मे ही उत्पन्न हुए है, भागवत के प्रचार करने वाले, सौंदर्य की खान, तत्ववेत्ता हैं :

"पंडित कला प्रवीन अधिक आदर दें आरज।
सम्प्रादय सिर छत्र द्वितिय मनो मध्वाचारज॥
जेतिक हरि अवतार सवै पूरन करि जानै।
परिपाटी ध्वजविजै सदृस भागवत बखानै॥
श्रुति स्मृती संमत पुरान तत्प मुद्राधारी भुजा।
कमलाकर भट जगत में तत्ववाद रोपी धुजा॥[1]"

१. सम्पादक हनुमान प्रसाद : भक्तमाल (प्रकाशित भक्त चरितांक कल्याण में), पृ० ९

उपर्युक्त छप्पय के द्वारा कवि के हृदय की भावनाओं का जीता-जागता चित्र हमारे सम्मुख आ उपस्थित हुआ है ।

बाल्यावस्था मे ही नाभादास को उनके माता-पिता ने त्याग दिया था ।[1] इसीलिए उनके हृदय मे ससार के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई थी और वे भगवान के भजन मे लीन हुए थे । अग्रदास के शिष्यत्व पद को ग्रहण करने के पश्चात् नाभादास ने भक्ति-मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया और उनके हृदय मे भक्तो और भगवान के प्रति आदर-सम्मान के भाव जागृत हुए । वास्तव मे इस नश्वर विश्व से विमुख होने पर मानव-हृदय की समस्त वृत्तियाँ इस लौकिकता को छोडकर पारलौकिकता की ओर अग्रसर होती है । यह सत्य नाभादास के साथ भी लागू होता है । चक्षु विहीन[2] होने के कारण विश्व का समस्त आकर्षण, ऐश्वर्य, वैभव, सभी कुछ नाभादास के लिए व्यर्थ था । यही कारण है कि वे विश्व के आकर्षणो से दूर रह कर भगवान के भजन मे लगे रहे । अपने गुरु की आज्ञानुसार उन्होने भक्तो का गुणगान प्रारम्भ किया ओर भक्तो की सहज अनुकम्पा भी नाभादास पर थी । नाभादास के भक्त हृदय मे भक्ति-भावना के सिवाय ओर किसी प्रकार के भावो का आविर्भाव ही न होता था, इसके मूल मे भगवान के प्रति अनन्य प्रेम के सिवा और कुछ न था ।

नाभादास का पालन-पोषण अग्रदास के गुरु कील्हदेव ने किया था । बाल्यावस्था से ही नाभादास के हृदय रूपी थाले मे कील्हदेव तथा अग्रदास ने भक्ति रूपी बीज बो दिये थे जो आगे चलकर पल्लवित और पुष्पित हुए । अग्रदेव के व्यक्तित्व का नाभादास के मस्तिष्क पर बडा स्वस्थ प्रभाव पडा और अपने गुरु की आज्ञा पाकर उन्होने 'भक्तमाल' जैसे विशाल ग्रथ की रचना की थी । नाभादास भगवान की भक्ति के महत्त्व से भलीभाति परिचित थे, भगवान की अपार शक्ति, अनन्त स्वरूप पर उन्हे पूरा विश्वास था । भगवान की आराधना सर्वोपरि है । जिस प्रकार वृक्ष की जडो को सिचित करने से उसके तने, शाखा, उपशाखा आदि सभी का पोषण हो जाता है तथा जैसे भोजन द्वारा प्राणो को तृप्त करने से समस्त इन्द्रिया सचेत हो जाती है, उसी प्रकार भगवान की आराधना करने से सभी की आराधना हो जाती है :

१. संपादक राधाकृष्णदास : भक्त नामावली, पृ० ८९

२. प्रताप सिंह कृत, भक्तनामावली, पृ० ३

"यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्ध भुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥"[1]

'भक्तमाल' के प्रारम्भ में कवि ने चौवीस अवतारों का वर्णन किया है। भगवान के चरण चिह्न भक्तों के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। भक्तों के लिए तो भगवान के चरणों की वंदना ही एक ऐसा साधन है जो उन्हें भव-बंधनों से छुटकारा दिलाता है। भगवान रामचन्द्र के चरण चिह्नों के विषय में कवि ने सीधी, सरल, भाषा के माध्यम से विशद वर्णन किया है। निम्नलिखित पंक्तियों में कवि हृदय की भावनाएँ साकार हो उठी हैं :

"अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाह्रद ॥
अर्ध चंद्र षटकोन मीन बिन्दु ऊरधरेखा।
अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुष विशेषा ॥"[2]

'भक्तमाल' में भक्तों के वर्णन प्रशंसात्मक अधिक है और उनमें स्वाभाविकता का अभाव कुछ खटकता भी है। किन्तु भक्तों के चरित्र सामान्य वर्ग के मानव से कहीं अधिक उच्च स्तर को पहुँचे हुए होते हैं। इसलिए 'भक्तमाल' के चरित्र वर्णन में स्वाभाविकता का कम होना आश्चर्य की बात नहीं।

कवि की लेखनी से गहन तथा सरल, गूढ़ एवं स्पष्ट महत्त्वपूर्ण एवं साधारण, उत्तम तथा मध्यम सभी भाव व्यक्त हुए हैं। भावों की सरलता कवि की अपनी प्रमुख विशेषता है। वह केवल क्लिष्ट शब्द का अजायबघर बनाने के पक्ष में नही था। नाभादास तो सरल भाषा के माध्यम से अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाने के इच्छुक थे। कबीर, शंकराचार्य, तुलसी आदि चरित्रों के पीछे कवि की स्वयं आत्मा बोलती-सी दिखायी पडती है। कबीर की खंडन-मंडन प्रवृत्ति के विषय में कवि ने लिखा है कि

"कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी।"[3]

काव्य कला की दृष्टि से 'भक्तमाल' के वर्ण्य विषय को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) भगवान का वर्णन—अलौकिक

---

१. श्रीमद्भा० (४।३१।१४) देवर्षि नारद
२. नाभाकृत भक्तमाल   ३. वही

(ख) भक्तों का वर्णन—चमत्कारिक, अलौकिक, साधारण।

कवि ने भगवान के उसी आदर्श, महान् स्वरूप की प्रतिष्ठा की है, जो स्वरूप युगों से चला आ रहा है। चौबीस अवतारों की वंदना में कवि अपने हृदय की समस्त भक्ति-भावना को काव्य के माध्यम से व्यक्त करता है :

"जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि बावन।
परसुराम रघुवीर, कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलक्की व्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ ध्यग्रीव, धुरुव बरदैन धन्वंतर॥[1]

कवि इन सभी अवतारों से करुणा की भीख माँगता है। इन अवतारों की जग को पवित्र करने वाली कीर्ति का कवि अनन्य भक्त, उपासक है।

भक्तों के वर्णन में कवि ने चामत्कारिक विवरणों का यत्र-तत्र समावेश किया है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि इन भक्तों के अलौकिक चरित्र से विशेष प्रभावित था। कवि के जीवन के प्रारम्भ से ही सम्भवतः उसके हृदय में ऐसे संस्कार बन गए हों और इस प्रकार के संस्कारों के लिए कवि को अनुकूल वातावरण भी प्राप्त हुआ था। नाभादास ने धना जी के विषय में कहा है कि, "धना जी के खेत मे विना बोये ही फसल उत्पन्न हुई थी।"[2] इस प्रकार के चामत्कारिक वर्णनों से कवि हृदय के भक्ति-भावना विषयक भाव अधिक स्पष्ट हो जाते है।

अभिव्यंजना शक्ति

कवि मे प्रतिभा का होना आवश्यक है। प्रतिभा-विहीन व्यक्ति के लिए काव्य-सर्जना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। संस्कृत साहित्य में अनेक ऐसे कवि हुए है जिन्हें केवल 'अभ्यास' के बल पर ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई, किन्तु उनके काव्य मे वह मनोहारिणी छटा का सर्वथा अभाव रहा है जो सहज ही किसी सहृदय को मुग्ध कर लेती है।

अभिव्यंजना-शक्ति रचना-शैली का प्रमुख अंग है। भावों के व्यक्तीकरण को ही कवि की अभिव्यंजना-शक्ति कहा जा सकता है। जितनी उच्चकोटि की उसकी अभिव्यंजना शक्ति होगी उतने ही अच्छे ढंग से कवि अपने भावों को व्यक्त करेगा। इस उच्च अथवा निम्न अभिव्यंजना-शक्ति के लिए कवि की

---

१. भक्तमाल २. भक्तमाल

प्रतिभा उत्तरदायी होती है। 'अभ्यास' करने से कोई उत्तम कवि नहीं बन जाता, वह तो जन्म से ही एक बृहत्तर प्रतिभा के भंडार को लेकर उत्पन्न होता है, जिसके सहारे वह साधारण से साधारण दृश्य को भी काव्य के माध्यम से प्रस्तुत कर हमारे आनन्द-वृद्धि की सामग्री जुटाता है। साधारण से साधारण भावों को कवि इस ढंग से अपनी काव्यात्मक भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है कि हम किकर्त्तव्य विमूढ-से ठगे-से उस कवि द्वारा प्रस्तुत चित्र को देखने और समझने में तल्लीन हो जाते है। अत्यन्त सूक्ष्म भावों का विशद व्यक्तीकरण कवि की पहुँची हुई अभिव्यंजना शक्ति का द्योतक है।

कवि के सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह रहता है कि वह किन मान-दंडों के आधार पर अपने भावों का व्यक्तीकरण करे जिससे उन विशेष भावों का प्रभाव सब पर समान पड़े। इसके लिए उसे अनुभूति की गहराइयों तक पहुँचना होता है, अपनी अनुभूतियों और भावों को वह सार्वभौम बनाकर काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। कवि की करुणा समस्त विश्व की करुणा का रूप धारण कर लेती है, उसका हर्ष-विषाद समस्त विश्व मे व्यापकत्व प्राप्त करता है। कवि तुलसी की करुणा समस्त समाज और देश का प्रतिनिधित्व करती है, उनके दैन्य मे समाज की दीनता का रूप झलकता है।

नाभादास एक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व को लेकर अवतरित हुए थे। नाभा-दास ने चरित्रो के वर्णन में नवीनता का समावेश न करके उनको ज्यों का त्यों अकित किया है। यत्र-तत्र मौलिकता के भी दर्शन हो जाते है। कवि ने कही कही चामत्कारिक विवरण प्रस्तुत करते समय कल्पना का जो समावेश किया है, वह अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है।

नाभादास की अभिव्यजना शक्ति का सबसे बड़ा परिचायक उनका 'भक्त-माल' है। भक्तमाल मे कवि ने प्राय. २०० भक्तो के चरित्र का गान किया है। इनमे सतयुग, द्वापर त्रेता और कलियुग के अनेक भक्त है। इन भक्तो मे कुछ सगुणोपासक है और कुछ निर्गुणोपासक। इनमे से कुछ विशेष प्रतिभा-सम्पन्न कवि है। कुछ बहुत साधारण कोटि के कवि। भक्तमाल मे हर प्रकार के भक्तों का चरित्र उल्लिखित हुआ है। इन विविध प्रकार के चरित्रों में कवि की अभि-व्यंजना शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। नाभादास को जितनी सफलता 'भक्तमाल के सुमेरु' गोस्वामी तुलसीदास के चरित्र-वर्णन में मिली है उतनी ही किसी भी नगण्य चरित्र की अभिव्यंजना मे। यही है कवि की अभिव्यंजना-

शक्ति का परिचायक । नाभादास की अभिव्यंजना-शक्ति अन्य भक्त कवियों की तुलना में समान रूप से महत्त्वपूर्ण है ।

नाभादास ने वर्णन या चरित्र की अभिव्यक्ति में संक्षिप्तता पर विशेष ध्यान रखा है । इसीलिए उनके द्वारा वर्णित प्रसंग और चरित्र बड़े संक्षेप में हैं ।

कवि नाभादास की अभिव्यंजना-शक्ति के परिचायक दो छंदों को यहाँ पर उद्धृत किया जाता है :

गुनगन विसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा ।।
वो हिथ, राम गुपाल, कुँवर वर, गोविन्द, मांडिल ।
छीत स्वामि, जसवन्त, गदाधर, अनंतानंद भल ।।
हरिनाम मिश्र, दीनदास, वछपाल, कन्हर जसगायन ।
गोसू, रामदास, नारद, श्याम, पुनि हरिनारायण ।।
कृष्ण जीवन, भगवानजन, श्यामदास विहारी, अमृतदा ।
गुनगन विसद गोपाल के एते जन भये भूरिदा ।।

तथा **(श्री) नंददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रंगमगे ।।**
लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना मे नागर ।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ।।
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी ।
सकल सुकुल संवलित भक्तपद रेनु उपासी ।।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पै मै पगे ।
(श्री) नंददास आनंद निधि, रसिक सु प्रभुहित रंगमगे ।।

इन दोनों पदो में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रथम पद मे नाभादास ने अनेक भक्तो के यश का गान एक ही पद मे कर दिया है और दूसरे पद में केवल नन्ददास का चरित्र वर्णित हुआ है । अभिप्राय यह है कि लेखक का अपनी लेखनी पर पूरा अधिकार है । वह आवश्यकतानुसार विषय को विस्तार और संक्षिप्तता प्रदान कर सकता है ।

कल्पना का उत्कर्ष

कवि एक विशेष दृष्टिकोण से संसार की समस्त वस्तुओं को देखता है । हम सभी नदी, झरनों, उपवनों को देखते हैं, उन दृश्यों से आनन्द की प्राप्ति होती है, किन्तु एक सामान्य व्यक्ति के वर्णन और कवि के वर्णन में महान् अंतर हुआ करता है । कवि मे भावुकता अधिक होती है, वह अपनी अन्तर्दृष्टि से

वस्तुओं की आत्मा तक पहुँच कर, उनका वर्णन कर एक नवीन वस्तु सम्मुख रखता है। कवि-हृदय में भावुकता का स्रोत अविरल रूप से प्रवाहित हुआ करता है, उसमें भावों की तरंगें उठा करती हैं और यही भाव जब बाहर आने के लिए तड़पने लगते हैं, कवि उनमें नवीनता आरोपित कर, उन्हें काव्य का स्वरूप प्रदान करता है। कवि वैज्ञानिक नहीं होता और न वह वैज्ञानिक सत्य का उपासक ही होता है। वह दृश्य का यथातथ्य वर्णन न करके, अपनी ओर से नवीनता और मौलिकता का समावेश करता है। यही काव्य में कल्पना के नाम से सम्बोधित की जाती है।

"कल्पना कवि की अलौकिक शक्ति है। यह शक्ति मानसिक है तथा थोड़ी-बहुत मात्रा में हर कवि में रहती है। इस शक्ति के दो प्रधान कार्य हैं। पहला है विषय को पार्थिव जगत से ऊपर उठाना और दूसरा है किसी आत्मिक अथवा आध्यात्मिक सत्य का निरूपण करना। जब यह दोनों कार्य कल्पना समुचित रीति से सम्पादन कर देती है तो काव्य उच्च कोटि का काव्य बन जाता है।"[1]

कवि के लिए निर्जीव पदार्थ भी सजीव हुआ करते हैं। उसे जड़ में भी चेतना का आभास होता है। उदाहरण के लिए एक पुष्प हमारे और आपके लिए कोई विशेष महत्त्व की वस्तु नहीं भी हो सकती है, किन्तु वही पुष्प कवि के लिए महत्त्वपूर्ण वस्तु हो सकती है। महादेवी जी का सुमन तो

"स्वप्न लोक की मधुर कहानी कहता सुनता अपने आप।"

कवि की दृष्टि क्षणमात्र में समस्त विश्व का भ्रमण कर लेती है।[2]

कल्पना काव्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्व है। कल्पना के द्वारा काव्य में, कवि चार चाँद लगा देता है। कल्पना कवि-मस्तिष्क की उपज हुआ करती है। एक ही वस्तु के विषय में यदि दो-चार कवि काव्य रचना करने बैठें तो प्रत्येक की कविता मे पर्याप्त विभिन्नता दिखायी पड़ेगी। कल्पना के माध्यम से कवि वस्तु विशेष के विषय मे कुछ न कुछ मौलिकता और नवीनता प्रस्तुत करता ही है, किन्तु यह मौलिकता और नवीनता स्वाभाविकता से दूर होने पर काव्य-सौंदर्य को हानि पहुँचती है। काव्य की महिमा इसी मे है कि हमसे परिचित

---

१. डा० एस० पी० खत्री : काव्य की परख, पृ० ५०-५१

२. "Poets eye is a fine frenzee, rolling from heaven to earth and from earth to heaven."

Shakespeare : Midsummer Nights Dream.

बाह्य-जगत् की व्याख्या कवि इस तरह करे कि हमें नित नूतन तथा आश्चर्य-जनक अनुभव मिलें और हमें उसके मनन से स्थायी आनन्द प्राप्त हो।

कवि और सामान्य मानव में एक अन्तर है यह कि कवि इस विश्व में रहता हुआ भी कल्पना-लोक में विचरण किया करता है, जबकि सामान्य मानव के सम्मुख इस प्रकार का कोई प्रश्न रहता ही नहीं। सामान्य मानव का जीवन यथार्थ अधिक होता है, कवि यथार्थ से दूर भागकर कल्पना-लोक की शरण में जाता है, किन्तु यथार्थ की नितांत अवहेलना कवि नहीं करता। कवि हरी घास, सफेद मेमने तथा निर्झर को देखता है जो इसी जड़ जगत के विषय हैं। कल्पना की प्रथम रश्मि ने उसे सुन्दर, सुकुमार तथा मधुर बनाया, दूसरी रश्मि ने उसे इस पार्थिव जगत से उठाकर आध्यात्मिक जगत में लाकर स्वच्छ रूप में प्रतिष्ठित किया। विषय की भौतिकता इस स्थल तक आते-आते आध्यात्मिकता में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार स्पष्ट है कि कल्पना काव्य के आध्यात्मिक परिवर्तन में सहायक होती है।

काव्य और कल्पना में घनिष्ट सम्बंध है। "काव्य और कल्पना में वैसा ही सम्बन्ध है जैसा सूर्य और पृथ्वी में है। जिस प्रकार पृथ्वी अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती रहती है, उसी तरह काव्य रूपी पृथ्वी मानव अनुभूतियों की धुरी पर कल्पना-सूर्य के चारों ओर घूमती है। जिस समय कल्पना की प्रखर किरणें काव्य पर पड़ती हैं उस समय काव्य का विषय इस पार्थिव लोक से उठकर एक दूसरे सौंदर्य-लोक में जा पहुँचता है। विषय की भौतिकता, कल्पना सूर्य की उष्णता से पिघल कर, स्वच्छ हो एक दूसरे जगत की आभा बन जाती है।"[१] स्पष्ट है कि कल्पना काव्य को ऐसा स्वरूप प्रदान कर सकती है जिसका अवलोकन कर हम एक ऐसे संसार में प्रवेश कर जाते हैं, जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द के सिवाय और कुछ है ही नहीं।

काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है। जिस काव्य में मानव जीवन की अनुभूतियाँ सुख, दुःख की भावनाएँ नहीं व्यक्त होतीं, वह साहित्य केवल मनोरंजन की सामग्री मात्र ही कहा जा सकता है। आज के कवि, साहित्यकार को जन-जीवन में प्रवेश करना अत्यन्त आवश्यक है। आज के साहित्यकार को यथार्थ की भूमि पर पनपना चाहिए। कल्पना लोक के कोमल कुसुमों के साथ खेलने की अपेक्षा उसे संसार और अपने चारों ओर फैले हुए समाज के प्रति चेतनशील रहना

---

१. डा० एस० पी० खत्री : काव्य की परख, पृ० ४७-४८

होगा । यथार्थवादी होते हुए भी कवि अपने भावों को व्यक्त करने के लिए कल्पना का माध्यम ग्रहण कर सकता है, किन्तु कल्पना तत्व यथार्थ की तुलना में असंतुलित न होना चाहिए । लगभग सभी भक्त-कवियों के काव्य के प्रेरक सूत्र जन-जीवन और तत्कालीन समाज ही रहे हैं, किन्तु यह नहीं कि उनका काव्य कल्पना-विहीन हो । इन भक्त कवियों के साहित्य में अनेक स्थलों पर सुन्दर कल्पनाओं का उत्कर्ष दृष्टिगत होता है ।

नाभादास के 'भक्तमाल' में स्थल-स्थल पर, कवि ने कल्पना का सहारा लेकर भक्तों के चरित्रों के विवरण को प्रस्तुत किया है । इन भक्तों के चरित्रांकन में कवि नाभादास की दृष्टि कल्पना तत्व की अपेक्षा आदर्श और यथार्थ तत्व की ओर अधिक रही है । हाँ, देवताओं और कुछ अन्य अवतारों के विषय में कवि ने अवश्य कल्पना का आश्रय लिया है । तथ्य तो यह है कि नाभादास वहुश्रुत थे और अपने इसी ज्ञान के भंडार को साधारण भाषा के माध्यम से ज्यों का त्यों 'भक्तमाल' के रूप में साहित्य के क्षेत्र में प्रस्तुत किया ।

कवि में भावुकता स्वभावतः होती है । भावुकता और कल्पनोत्कर्ष में निकट का सम्बंध है । कवि होने के नाते नाभादास में भावुकता और कल्पना तत्व होना स्वाभाविक है ।

'भक्तमाल' के पूर्वार्ध के लगभग समस्त चरित्र काल्पनिक हैं । उनका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं प्राप्त होता । उत्तरार्ध के लगभग सभी भक्त अस्तित्व रखने वाले थे । इन चरित्रों के वर्णन में कवि कल्पना का सहारा लेकर आगे बढ़ता है । कवि का सबसे बड़ा कौशल तो इस बात से सिद्ध होता है कि यथार्थ के साथ-साथ उसने कल्पना का पुट भी दिया है । कवि सम्भाव्य और स्वाभाविक बातों की ही कल्पना करता है, रीति कालीन कवियों की अस्वाभाविक कल्पनाओं से वह दूर है । कवि भक्तों के आदर्श चरित्र की स्थापना करने का सतत प्रयास करता दिखायी देता है ।

अग्रदास के चरित्राकन मे कवि की कल्पना देखने योग्य है । 'अग्रदास ने हरिभजन के सिवा कभी व्यर्थ मे समय नष्ट नही किया,' इस बात को सीधे-सादे ढंग से कवि न कहकर निम्नलिखित शब्दों द्वारा प्रकट करता है :

"रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर ।"[1]

---

१. प्रियादास कृत भक्तमाल टीका

कवि अग्रदास के 'रसना' के विषय मे कल्पना करता है कि मानो वह मेघ के समान है जिससे भगवान के निर्मल नाम की वर्षा हुआ करती है।

भक्तो के साथ सदैव भगवान रहते है। इस बात को कवि अलंकरणशैली के माध्यम से प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि "भक्तनि सग भगवान नित (ज्यो) गऊ वच्छ गोहन फिरै।"[1] कितना स्वाभाविक, प्रभावशाली कवि द्वारा प्रस्तुत यह काल्पनिक चित्र बन पड़ा है।

कल्पना के दो विभाग भी किये जा सकते है—(१) मौलिक, (२) पूर्व प्रसगो के आधार पर की गई कल्पना।

कल्पना के इन दो उपर्युक्त विभागो मे से नाभादास के काव्य मे प्रथम विभाग (मौलिक कल्पना) का आधिक्य है। नाभादास का उद्देश्य रीतिकालीन कवियो की भाँति 'कोरी कल्पना' की उडान मे उडना न था। भक्तों के चरित्रो का विवरण देते हुए अनायास ही उनके काव्य मे कल्पना का समावेश हो गया है। कवि द्वारा प्रस्तुत किये हुए ऐसे स्थल सर्वथा मौलिक है तथा जन-सामान्य के लिए भी अपने मे आकर्षण रखते है। दुरूह कल्पना का भी नाभादास के काव्य मे अभाव है। मीराबाई के विषय मे कवि कल्पना करता है कि कलियुग मे मीरा उस गोपी के समान ही उत्पन्न हुई है जो समाज आदि का भय त्याग कर कृष्ण के रग मे उन्मत्त है :

"सदृस गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो।
निरअंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥

*　　　*　　　*

भक्ति निसान बजाय के काहूँ ते नाहिन लजी।

रस

रस काव्य की आत्मा माना गया है। 'साहित्य-दर्पण' के यशस्वी लेखक ने काव्य की परिभाषा का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'वाक्य रसात्मक काव्य' अर्थात् रसयुक्त कलात्मक अनुभूति से पूर्ण भाषा को कविता कहते है।[2] 'रस-गगाधर' मे काव्य की परिभाषा को निर्धारित करते हुए कहा गया है "रमणीयार्थक प्रतिपादकशब्द काव्यम्।"[3] काव्य का आनंद रस पर ही निर्भर रहता है। यह रस भाव, विभावादि द्वारा उद्बोधित सतोगुण प्रधान सहृदय के स्थायी

---

१. वही　　२. साहित्य दर्पण　　३. वही

स्थल पर मिलते हैं। जहाँ पर कवि ने भक्तों के अलौकिक चरित्रों का विवरण दिया है, वहाँ पर अद्भुत रस का परिपाक हुआ है। 'भक्तमाल' में चारित्रिक गुणों के आधार पर रसपरिपाक हुआ है। अधिकांश चरित्र भक्तों के ही हैं जिनके चरित्र वैराग्य तथा त्याग के ज्वलंत उदाहरण हैं और इन विशेषताओं को अपने में समाहित कर शांत रस ही काव्य के क्षेत्र में पदार्पण करता है।

'भक्तिपंचरस' का वर्णन करते हुए रूपकला जी ने कहा है कि :

"शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार चारु,
पाँचो रस सार विस्तार नीके गाये हैं।
टीका को चमत्कार जानोगे विचारि मन,
इनके स्वरूप मैं अनूप लै दिखाये हैं।
जिनके न 'अश्रुपात' पुलकित गात कभूँ,
तिनहूँ को 'भाव' सिंधु बोरि सो छकाये हैं।
जौलौं रहै दूर रहैं विमुखता पूर,
हियो होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं।।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में रूपकला जी ने इस बात का संकेत किया है कि उन्होंने 'भक्तमाल' की टीका में अनेक रसो का विधान किया है, जो भक्तों के हृदय' को रसमग्न कर देते है। 'भक्तमाल' और उसकी टीका 'भक्तिरस बोधिनी' (प्रियादास कृत) में भी भक्त जनो के लिए शृंगार, सख्य, वात्सल्य, दास्य, शांत, रसों की योजना की गयी है, जो भक्तहृदयों को तृप्त करने का सुलभ साधन है।

'भक्तमाल' में आद्योपांत भक्तचरित्र वर्णित है। पूर्वार्ध में देवताओं तथा त्रेता और द्वापर के चरित्रों के दर्शन छाया की भाँति हो जाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि यह चरित्र अपूर्ण है। उत्तरार्ध में कवि ने लगभग २०१ भक्तों के जीवन के संक्षिप्त विवरणों को हमारे सम्मुख रखा है। यह सभी भक्तचरित्र हैं, विश्व में रहते हुए भी निर्लिप्त है; त्याग और वैराग्य इन भक्तों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सर्वप्रथम शांतरस के परिपाक पर विचार किया जायगा।

---

१. तिलक, रूपकला, भक्तिसुधारवाद, पृ० १४-१५

शांतरस

भक्तों और संतों के काव्य में शांतरस की धारा अविरल रूप से प्रवाहित होती रही है। यथार्थ में इन भक्तों एवं संतों की काव्यरचना का मुख्य आधार, शांत रस ही है। शांतरस को यदि संत-काव्य और भक्ति-काव्य की आत्मा माना जाय, तो त्रुटि न होगी।

शांतरस वैराग्य से उत्पन्न होता है, इसका स्थायी भाव निर्वेद है, ब्रह्म और यह नश्वर संसार आलम्बन, तपोवन, गंगा आदि पवित्र स्थान, साधु उद्दीपन विभाव, रोमांचादि अनुभव और हर्ष स्मृति आदि इसके संचारी भाव है।[1] जिन प्रमुख तत्वों का समावेश शांतरस में होता है, वे सभी तत्व साधु, महात्माओं और संतों में उपलब्ध होते हैं। नाभादास, भक्त थे, उन्होंने भक्तिप्रधान भावों की रचना प्रचुर मात्रा में की है। वास्तव में नाभादास का प्रथम उद्देश्य यही था कि भक्तों के चरित्रों का गायन कर भक्ति धारा का स्रोत प्रवाहित किया जाय। अपने गुरु की आज्ञा पाकर ही उन्होंने भक्तों के चरित्रों का गुणगान किया था :

"अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन कौ यश गाउ।
भव सागर के तरन कौ, नाहिन और उपाउ।।"[2]

कवि ने जिन भक्तों के चरित्रों को प्रस्तुत किया है, वे सभी त्यागी, महात्मा थे। विट्ठलनाथ जी पुत्र कृष्णदास जी का चरित्र प्रस्तुत करता हुआ कवि उन्हें भगवान के भजन में लीन, सज्जन, महात्मा आदि बतलाया है।

"श्री वल्लभ गुरुदत्त भजन सागर गुनआगर।
कवित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर।।
बानी बंदित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
ब्रजरज अति आराध्य, वहै धारी, सर्वसु चित्त।।
सानिध्य सदा हरिदास बर्य, गौर श्याम दृढ़ ब्रत लियौ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौ नाम मांझ साझो दियौ।।"[3]

कवि द्वारा प्रस्तुत चरित्रो के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि सर्वत्र

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यादर्श, पृ० २०
२. तिलक रूपकला, भक्ति सुधार-वाद (भक्तमाल की टीका) पृ० २५
३. वही, पृ० ५८१

आत्मनिवेदक के रूप में हमारे सम्मुख आता है और यथार्थ में कवि हमारे सम्मुख एक सच्चे आत्मनिवेदक के रूप में ही आता है।

अद्भुत-रस

अद्भुत-रस की उत्पत्ति उन स्थलों से होती है जो हमें आश्चर्य चकित कर देते है। विस्मय, इस रस का स्थायी भाव है, आश्चर्यजनक वस्तु आलम्बन है, उसकी आश्चर्यकारी दशाएँ उद्दीपन विभाव है, स्तम्भ अनुभव है, वितर्क संचारी भाव है।

'भक्तमाल' में इस रस के उदाहरण वे चरित्र है जिनमें कवि ने अलौकिक और चामत्कारिक घटनाओं का समावेश किया है। पूर्वार्ध में (भक्तमाल के) हनुमान जी का चरित्र इसी कोटि में रखा जा सकता है। धना जी के चरित्र में भी कवि ने एक ऐसी घटना का विवरण दिया है, जो अनायास ही हमें आश्चर्य-चकित कर देती है। एक बार धना जी के घर अनेक साधु आये। खेत में बोने के निमित्त रखा हुआ सभी अन्न धना ने उन भक्तों को खिला दिया और अंत में क्षेत्र में यों ही हल चलवा दिया। भगवान की कृपा से उनके खेत में विना बोये हुए ही फसल उत्पन्न हो गई :

"घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये।
तात, मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये॥
आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई॥
अचरज मानत जगत में कहुँ निपुज्यो, कहुँवै वयौ।
धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ॥"[1]

तीसरी पंक्ति में हास्य का भी अच्छा प्रस्फुटन दृष्टिगत होता है। अन्य कृपक धना की मूर्खता पर हँसते थे कारण कि उन्होंने विना बीज खेत में डलवाये ही लांगूल चलवा दिया था। अंतिम पंक्ति में अद्भुत रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार कवि निष्किचन भक्त के चरित्र में भी अद्भुतरस का समावेश करता है। इस भक्त की भक्ति से प्रभावित होकर भगवान स्वयं इसके घर पधारे थे :

---

१. भक्तमाल (भक्त चरितांक कल्याण), पृ० ५

"साखि देन कौ स्याम 'खुरदहा' प्रभुहि पधारे।"[1]

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण 'भक्तमाल' में उपलब्ध होते हैं।

दास्य भावना सम्पूर्ण 'भक्तमाल' में दृष्टिगत होती है। नाभादास सभी भक्त चरित्रों में अपने को सबसे निम्नकोटि का समझते हैं। प्रत्येक चरित्र की कवि स्तुति, वंदना करता हुआ दिखाई पड़ता है। माधुर्य भाव के भी उदाहरण मीरां तथा अन्य कुछ भक्ताओं के चरित्र में मिल जाते हैं। वीभत्स का उदाहरण कवि ने एक चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। एक भक्त की भक्ति का विवरण देता हुआ कवि कहता है कि उस भक्त ने दान में अपने पुत्र का शीश दे दिया था और अपनी सच्ची को बनाये रखने के लिए पुत्र का वध भी कर दिया। कुछ चरित्रों में एक साथ ही दो-दो रस आ उपस्थित हुए हैं, जैसा धना के चरित्र में हास्य और अद्भुत। किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से यह कवि की पहुँच का परिचायक है, कारण कि ये दोनों ही रस विरोध नहीं रखते।

चरित्र-चित्रण की शक्ति

सम्पूर्ण 'भक्तमाल' में देवताओं और भक्तों के चरित्रों को ही कवि ने प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ के पूर्वार्ध में देवताओं के चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है। पूर्वार्ध के यह चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और अनेक गुणों से सम्पन्न हैं। स्वभावत: हमारे मन में भगवान के प्रति श्रद्धा और सम्मान रहता ही है। कवि ने भी इन देवताओं के चरित्रों मे अनेक गुण समाविष्ट किये हैं जो हमे आकृष्ट करते हैं। हनुमान जी का जैसा रूप आज हिन्दू जनता के मध्य प्रतिष्ठित है, उसी के अनुरूप नाभादास भी हनुमान जी के चरित्र को अंकित करते हैं। हनुमान हिन्दुओं के पूज्य देवता माने जाते है, जामवंत, जटायु आदि भी हमारे लिए पूज्य है। कवि कहता है :

"हरिवल्लभ सब प्रार्थी, निज चरण रेणु आसाधरी।
हनुमंत, जामवंत, सुग्रीव, विभीषण शबरी खगपति।"

नाभादास प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। भक्त-चरित्रों के गायन के लिए ही उन्होंने अपनी लेखनी का सहारा ले भाषा के माध्यम से भक्तचरित्रों का चित्र अंकित किया है। नाभादास द्वारा वर्णित चरित्रों की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है :

---

१. वही, पृ० ३

१. स्वाभाविकता   २. प्रशंसात्मकता   ३. अलौकिकता

१. स्वाभाविकता

कवि चरित्रों के अन्तरतम तक पहुँचकर, उनका अत्यन्त स्वाभाविक विवरण देता है। भक्त और भगवान हमारे लिए आदर और सम्मान के पात्र हुआ करते हैं। उनमें गुणों के सिवाय दोप होते ही नहीं, वे त्यागी, जितेन्द्रिय होते हैं। नाभादास ने सभी भक्तों के चरित्रों को इसी रूप में प्रस्तुत किया है।

२. प्रशंसात्मकता

यह भक्तमाल में वर्णित भक्तों के चरित्रों की दूसरी विशेषता है। सभी भक्तों के चरित्र प्रशंसा से पूर्ण हैं।

३. अलौकिकता

चरित्रों में चामत्कारिक घटनाओं का समावेश कर कवि ने उन्हें अलौकिकता प्रदान की है। कवि ने भक्तों के चरित्रों का भलीभाँति चित्रण न करके उन चरित्रों से उद्भूत गुणों पर विशेष ध्यान रखा है। कवि का उद्देश्य चरित्रों के गुण-दो ों का विवेचन करना न था, वह तो इन भक्त-चरित्रों को जनता के सम्मुख रख कर, उनके पवित्र जीवन से भारतीय धर्म-प्राण जनता में भक्ति की जागृति चाहता था। कवि भक्तो के जीवन की सभी घटनाओं को न प्रस्तुत कर केवल उनका लोक कल्याणकारी रूप ही प्रस्तुत करता है।

'भक्तमाल' में वर्णित चरित्र इतने अपूर्ण है, कि किसी भी भक्त विशेप के विपय मे हमें पर्याप्त सामग्री नही उपलब्ध हो पाती। चरित्र-चित्रण में कवि की सफलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि ये चरित्र अधूरे होते हुए भी हमारे हृदय की श्रद्धा के पात्र बन सकें।

'भक्तमाल'में कवि ने चरित्र-चित्रण पर सम्यक् रूप से ध्यान नहीं दिया है। परन्तु फिर भी भक्तों के चरित्र का जो कुछ वर्णन हुआ है वह सुन्दर है। यहाँ पर चरित्र-चित्रण विषयक कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं:

(क) लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरां गिरिधर भजी ॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट, कलिजुगहि दिखायौ।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ।
दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिम कीयौ।
वारन वाँका भयौ, गरल अमृत ज्यों पीयौ।

भक्ति निसान वजाय कै, काहू ते नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल शृंखला तजि 'मीरां' गिरिधर भजी ॥[१]

(ख) श्रीरामानुज पद्धति प्रताप, 'भट्ट लक्षमन' अनुसर्यौ ॥
सदाचार मुनिवृत्ति भजन भागौत उजागर ।
भक्तनि सो अति प्रीति भक्ति दसधा को आगर ॥
संतोषी तुठि सील हृदै स्वारथ नहि लेसी ॥
परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी ॥
श्री भागौत बखान कै नीर क्षीर बिबरन कर्यौ ।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप 'भट्ट लक्षमन' अनुसर्यौ ॥[२]

इन दो पदों में कवि के चरित्र-चित्रण का आभास प्राप्त हो जाता है । पहले पद से मीरां और दूसरे से भट्ट लक्षमण के चरित्र का पूर्णाभास हमें मिल जाता है । यह कवि की सफलता का द्योतक है । निम्नलिखित छंद में देखिए तत्वा जी और जीवा जी का चरित्र कितनी सुन्दरता के साथ अंकित हुआ है :

तत्वा जीवा दक्षिण देस बंसोद्धर राजत विदित ।
भक्ति सुधा जल समुद्र भये बेलावलि गाढ़ी ।
पूरब जा ज्यों रीति प्रीति उत्तरोत्तर बाढ़ी ।
रघुकुल सदृश सुभाव, सिष्ट गुण, सदा धर्म रत ।
सूर, धीर, उदार, दया पर, दक्ष अनन्य व्रत ॥
पद्म खंड 'पदमा पद्धति' प्रफुल्लित कर सविता उदित ।
'तत्वा' 'जीवा' दक्षिण देस बंसोद्धर राजत विदित ॥[३]

छंद

काव्य-शास्त्रियों के मतानुसार छंद काव्य का अनिवार्य अग है । इसे काव्य से भिन्न नही किया जा सकता । छंद की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए विद्वानों ने कहा है कि, "छंद का प्रचार वहुत प्राचीन काल से दिखायी देता है । यह उतना ही प्राचीन है जितने प्राचीन वेद है। वेद के छह अंगों (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छंद) में से एक यह भी है ।"[४]

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मत से "काव्य के भेद वतलाते हुए शैली के अनुसार उसके दो भेद किये गए है, गद्य और पद्य । . . . पद्य नाम इसलिए

१. भक्तमाल, पृ० ७१९
२. वही, पृ० ९०२
३. भक्तमाल, पृ० ५४२
४. वाङमय विमर्श, पृ० १६७

पड़ा कि इस रचना का सम्बंध पद (चरण) से है। पदों (चरणों) के अनुसार वहुत-से साँचे बनाये गए, इसीलिए वे बने बनाये साँचे पद्य कहलाते हैं। छंद नाम भी इसी ढंग से रखा गया है। यद्यपि गद्य मे भी कुछ न कुछ बंधन होता है, पर उसकी लबाई बँधे हुए साँचो मे नही हुआ करती। किन्तु पद्य की रचना लबाई की विशेष नाप के अनुसार चलती है। इसी बधन का नाम 'छंद' है।"[1] डा० रसाल का कथन है कि, "छंद पद्य का वह व्यवस्थित रूप है जिसमें भाव-प्रकाशन शब्द मात्राओ और वर्णो की निश्चित संख्या के साथ ऐसे संगठित किये जाते है कि भाव व्यक्त होता हुआ भी अव्यक्त-सा रहता है और कुछ यत्न से स्पष्ट होता है। संगीतात्मक लय इसकी रुचिरता और रोचकता को बढ़ा देते है। गद्यगत शब्द व्यवस्था के सदृश छंद मे शब्द-व्यवस्था नही रहती है क्योकि इसमे गेयता आवश्यक होती है।"[2] वयोवृद्ध लेखक बाबू गुलाब राय के मत से भावमयी भाषा में जो स्वाभाविक गति आ जाती है, छद उसी का बाहरी आकार है। छंद मे वर्ण नृत्य की भाँति ताल और लय के आश्रित रहते है। छद भाषा को भावानुकूल बनाकर पाठक मे एक विशेष ग्राहकता उत्पन्न कर देते है।[3]

उपर्युक्त विद्वानों के इन मतों का अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि छद, काव्य-सौंदर्य, ग्राहकता और काव्य-कला की अभिवृद्धि के लिए वहुत ही आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वान् सर सिडनी फिलिप का कहना है कि, "ससार के सबसे अधिक कवियों ने अपनी कविता को छंदों से आभूषित किया है। परन्तु केवल छंद से ही काव्य की उत्पत्ति नही होती। महान् कवियों ने तो छंद-हीन काव्य भी रचे है।"[4] इसके विरोध मे आर० हार्ड ने कहा है कि "काव्य मे सम्पूर्ण आनन्द के लिए छंद अत्यन्त आवश्यक है, विना इसके काव्य के सुनने का आनन्द समाप्त हो जाता है।[5] डा० श्यामसुन्दर दास जी का इस सम्बध में निर्णय पठनीय होगा। उनके शब्दों में, "सिद्धान्त रूप म छंदो की अनिवार्यता का खंडन करते हुए भी हम यह स्वीकार करते है कि

---

१. वही, पृ० १६७

२. रसछंदालंकार, पृ० ७५

३. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० १९०

४, Sidney Philip : An Apology for Poetry, p. 50

५. R. Hard : Idea of Universal Poetry, p. 60

संसार का काव्य साहित्य एक बटी मात्रा में छंदोवद्ध है और वे छंद संगीत शास्त्र के अनुसार निर्मित है । पश्चिम मे अब तक कविता और छंद का अन्योन्य सम्वध माना जाता है ।...पद्य मात्र को कविता नाम देने में कितनी भ्रांति है, यह कहने की आवश्यकता नही है ।"[१]

भक्त कवियों का काव्य भी छंदों में लिखा गया है । परन्तु यह सत्य है कि इन भक्तों की दृष्टि में छंद का उतना अधिक महत्त्व नहीं था। छंद उनके लिए जनता तक पहुँचने का एक साधन मात्र था । भक्तों ने अपने काव्य को गेय, कर्ण-प्रिय बनाने के लिए छंदों का सहारा लिया । इसके अतिरिक्त भावों और संदेशों को छंदों में बाँधने का एक और भी कारण था। भावों के प्रसार और प्रचार के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे संगीतात्मकता का आधार माधुर्य, पाठ सौंदर्य और कलात्मकता होने के कारण काव्य प्राय. पद्यात्मक ही रखा गया । इसी संगीतात्मकता को सुरक्षित रखने के लिए काव्य-शास्त्रियों ने चरणान्त की अक्षर मैत्री (या तुक) का विधान, काव्य के लिए उपयोगी माना है ।[२] नाभादास ने भी अपने काव्य को ज्ञेय और सगीतात्मक बनाने के लिए, छंदों की सहायता ली, इसमें लेशमात्र भी संदेह नही है । नाभादास का छंदादर्श भक्तों के आदर्श से साम्य रखता है । 'भक्तमाल' की रचना के लिए नाभादास ने तीन ही छंदो का प्रयोग किया है :

१. छप्पय २. कुडलियाँ ३. दोहा

नाभादास ने 'भक्तमाल' की रचना के लिए १९६ छप्पय छंदों, १७ दोहों और दो कुडलियों का प्रयोग किया है । अव इनमे से प्रत्येक के कतिपय उद्धरण दिये जा रहे है :

छप्पय

पहले ४ चरण रोला के, अन्तिम दो चरण उल्लाला के होते है :

(१) 'व्रजभूमि उपासक' भट्ट सों, रचि पचि हरि एकै कियौ ॥
गोप्यस्थल मथुरा मंडल जिते 'वाराह' वखाने ।
ते किये 'नारायण' प्रगट प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने ॥
भक्ति सुधा कौ सिंधु, सदा सतसंग समाजन ।
परम रसज्ञ, अनन्य, कृष्णलीला कौ भाजन ॥

---

१. साहित्यालोचन, पृ० १०१

२. वाङ्मय विमर्श, पृ० १७७

ज्ञान समारत पच्छ कों नाहिन कोउ खंडन बियौ।
'ब्रजभूमि उपासक' भट्ट सों, रचि पचि हरि एकै कियौ ॥"[१]

'छप्पय' छंद में प्रथम चार चरण रोला के होते हैं अर्थात् ११ और १३ मात्राओं पर विराम होता है, चरणान्त में लघु और गुरु का विशेप ध्यान नहीं रखा जाता, अन्तिम दो चरण उल्लाला के होते हैं अर्थात् १३ और १३ मात्राओं पर विराम होता है और अन्त में गुरु वर्ण होता है। इस कसौटी पर उपर्युक्त छप्पय पूर्ण है।

दोहा

विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्राओं के साथ, विषम चरणों के आदि में जगण (।ऽ।) और सम चरणों के अंत में तगण (ऽऽ।) या जगण रखते हुए, चौवीस मात्राओं का छंद है।

'भक्तमाल' के कुछ दोहों के उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

(१) "भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु, चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किये, नाशै विघ्न अनेक ॥"[२]

(२) "मंगल आदि विचारि रह, वस्तु न और अनूप।
हरिजन कौ यश गावते, हरिजन मंगल रूप ॥"[३]

कुंडलिया

इस छंद में पहले एक दोहा और फिर रोला के चार चरण होते हैं। कुडलिया छंद का कतिपय उद्धरण निम्नलिखित प्रस्तुत है :

गलतें गलित अमित गुण, सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरि करी, कृष्णदास कलि जीति ॥
कृष्णदास कलिजीति, न्योति नाहर पल दीयौ।
अतिथि धर्म प्रतिपालि, प्रगट जश जग में लीयौ ॥
उदासीनता अवधि, कनक कामिनि नहिं रातो।
रामचरण मकरंद रहत निसिदिन मद मातो ॥
गलतें गलित अमित गुण, सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरि करी, कृष्णदास कलिजीति ॥"[४]

सि.

१. भक्त Sidı पृ० ५९५ २. भक्तमाल, प० ४१ ३. भक्तमाल, पृ० ४२
४. भ. R. Hoo ९०२-९०३

अलंकार

काव्य के क्षेत्र में अलंकार के विषय में अनेक प्रकार की धाराएँ दृष्टिगत होती हैं। अलंकार की अनेकानेक परिभाषाएँ उल्लिखित हुई हैं। "अलंकारोति इति अलंकार:" अर्थात् जो विभूषित करे वही अलंकार है। भामह तथा दंडी ने काव्य के लिए अलंकार को विशेष महत्त्व दिया है। "भामह की काव्य में अलंकार सम्बंधी वही धारणा है जो भरत की नाटक में रस सम्बंधी।...दंडी की धारणा अलंकार के सम्बंध में और भी व्यापक है। उनकी दृष्टि में काव्य की शोभा बढ़ाने वाले सभी धर्म अलंकार हैं (काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते)...।"[1] "अलंकार शब्द का अर्थ है पर्याप्त रूप से सुसज्जित और सुशोभित करने वाला। काव्य को सुशोभित करने वाले उन विधानों को अलंकार कहते हैं जिनके द्वारा काव्य में आकर्षण आता है। काव्य-शोभा और श्री के बढ़ाने में अलंकार ही समर्थ है। काव्य की शोभा को बढ़ाते हुए रसभावादि के उत्कर्षक चातुर्य चमत्कारपूर्ण वे विधान अलंकार हैं जो शब्द और अर्थ में समाकर्षक सौंदर्य लाते हैं।"[2] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में "अलंकार एक विशेष प्रकार की लिखने या बोलने की शैली है और उसके द्वारा विशेष प्रकार के अर्थ लक्षित कराये जाते हैं।...कहने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि काव्य को अलंकार रहित मानना वैसा है जैसे अग्नि को उष्णता रहित मानना।...काव्य अनलंकार कभी नहीं हो सकता।"[3] आचार्य मिश्र जी के प्रस्तुत कथन के अंतिम शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। यह सत्य है कि काव्य को अलंकार रहित या अलंकार से अछूता रखना बड़ा दुस्तर कार्य है। यदि काव्य को रमणीयता प्रदान करना है तो अलंकारों का सहारा किसी न किसी रूप में, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से लेना ही पड़ता है। हिन्दी के भक्त कवियों ने अपने काव्य की रचना प्रतिभा-प्रकाशन के लिए नहीं की थी, किन्तु उनका काव्य अलंकारों से विहीन नहीं है। संत कवि दरिया साहब ने अपना काव्यादर्श स्पष्ट करते हुए लिखा है :

"सकल कवित का अर्थ है, सकल बात की बात।
दरिया सुमिरन राम का कर लीजे दिन रात।"[4]

---

१. डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी रीति-साहित्य, पृ० २८
२. डा० रसाल : रस छंदालंकार, पृ० २५
३. वाङ्मय विमर्श, पृ० १३३
४. डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित [illegible]-दर्शन

काव्य को राम के 'सुमिरन' का बहाना मानने वाले कवि दरिया साहब का साहित्य स्वतः अलंकारों से रहित नहीं है। भक्त प्रवर नाभादास इस कथन के अपवाद नहीं है। 'भक्तमाल' के अंत में नाभादास ने लिखा है :

"हरिजन को गुण बरन ते, जो करै असुया आय।
इहाँ उदर बाढ़ै बिथा, औ परलोक नसाय ॥
जो हरि प्राप्ति की आस है, तौ हरिजन गुन गाय।
नतरु सुकृत भुंजे बीच ज्यों, जनम जनम पछिताय ॥"[1]

स्पष्ट है इस आदर्श को हृदय में धारण करने वाले कवि नाभादास काव्य को "हरिजन सुजस गान" एक साधन मात्र मानते थे। परन्तु इतना होते हुए भी उनका काव्य अलंकारों की छटा से युक्त है। सच बात यह है कि नाभादास न तो अलंकारों की छटा से पाठकों का मन सम्मोहित करने के लिए 'भक्तमाल' की रचना करने बैठे थे, न उन्होंने सजग होकर इस ओर ध्यान ही दिया था। परन्तु भक्तों की कीर्ति रूपी निर्मल स्निग्ध चन्द्रिका में अवगाहन करके वे भावुकता के रंग में अनुरंजित हो उठते थे। ऐसे ही क्षणों में लिखित भावुकता से पूर्ण स्थलों में अलंकारों ने उनके काव्य में स्थान पा लिया है। अलंकारों के प्रयोग से नाभादास की कविता रमणीय और भाषा प्रभावशाली बन गई है।

नाभादास के इस लोकप्रिय ग्रन्थ में सामान्यतया निम्नलिखित अलंकारों का प्रयोग हुआ है :

(क) अनुप्रास (ख) उपमा
(ग) रूपक (च) अतिशयोक्ति

इन समस्त अलंकारों में अनुप्रास और उपमा अलंकार नाभादास को विशेष प्रिय थे। यहाँ पर 'भक्तमाल' से अनुप्रास के कुछ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

(१) "कलिकाल कठिन जग जीति यों, राघौ की पूरी परी ॥
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की लहर न लागी।
सूरज ज्यों जल ग्रहै, बहुरि ताही ज्यौं त्यागी ॥
सुन्दर शील सुभाव, सदा संतन सेवाव्रत।
गुरु धर्म निकल निर्बह्यौ, विश्व में विदित बडौ भृत ॥

१. भक्तमाल, पृ० ९३६-३७

अल्हराम रावल कृपा, आदि अंत धुकती धरी ।
कलिकाल कठिन जग जीति यौं राघौ की पूरी परी ।।"[1]

(२) 'गुननिकर' 'गदाधरभट्ट' अति, सबहिन कौ लागै सुखद ।।
सज्जन, सुहृद, सुशील, बचन आरज प्रतिपालय ।
निर्मत्सर, निहकाम कृपा करुणा कौ आलय ।।
अनन्य भजन दृढ़ करनि धरचौ बपु भक्तनि काजै ।
परम धरम कौ सेतु, विदित वृन्दावन गाजै ।।
भागौत सुधा बरषै बदन, काहू कों नाहिन दुखद ।
गुननिकर 'गदाधरभट्ट' अति, सबहिन को लागै सुखद ।।"[2]

(३) "जयदेव कवि नृप चक्कवै, खंड मंडलेश्वर आन कवि ।।
प्रचुर भयो तिहुँलोक 'गीतगोविन्द' उजागर ।
कोक काव्य नव रस सरस सिंगार को सागर ।।
अष्टपदी अभ्यास करै तेंहि बुद्धि बढ़ावै ।
(श्री) राधारमन प्रसन्न सुनन निश्चय तहँ आवै ।।
संत सरोरुह खंड को 'पद्मा' पति सुख जनक रवि ।
जयदेव कवि नृप चक्कवै, खंडमंडलेश्वर आन कवि ।।"[3]

(४) "कलि कुटिल जीव निस्तार हित, वाल्मीक 'तुलसी' भयौ ।
त्रेता काव्य निबंध करिव सतकोटि रमायन ।
इक अक्षर उद्धरै ब्रह्म हत्यादि परायन ।।
अब भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी ।
रामचरन रस भक्त रटत अह निसि व्रतधारी ।।
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नौका लयौ ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीक 'तुलसी' भयौ ।।"[4]

इन उद्धरणों मे अनुप्रासालंकार अपने सहज और स्वाभाविक रूप मे प्रयुक्त हुआ है । उपमा अलंकार का प्रयोग सामान्य रूप से अधिक हुआ है । कवि ने वर्णित चरित्रों की महत्ता प्रमाणित करने के लिए उन्हे कभी पारस, कभी कल्पतरु, कभी चन्द्र के समान निर्मल और निष्कलंक कहा है । इन स्थलो मे उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय उदाहरण दिये जाते है:

१. भक्तमाल, पृ० ७८९ २. वही, पृ० ७९३ ३. वही, पृ० ३४९-५०
४. भक्तमाल, पृ० ७६२

"जंगली देश के लोग सब, 'परशुराम' किय पारषद ॥
ज्यों चंदन कौपवन नीम्ब पुनि चन्दन करई ।
वहुत काल तम निबिड़ उदै दीपक ज्यौं हरई ॥. . . ."[१]

(श्री) अग्रदास हरिभजन विन, काल वृथा नहि बित्तयौ ॥
सदाचार ज्यों संत प्राप्त जैसे करि आये ।
सेवा सुमिरण सावधान, चरण राघव चित लाये ॥
प्रसिध बाग सों प्रीति सुहृथ कृत करत निरंतर ।
रसना निर्मल नाम मनहुँ बर्षत धाराधर ॥
(श्री) कृष्णदास कृपाकरि भक्तिदत्त, मन बच क्रम करि अटल दयौ ।
(श्री) अग्रदास हरिभजन बिन काज वृथा नहि बित्तयौ ॥"[२]

उपर्युक्त प्रथम छद मे अन्तिम दो पक्तियो मे कवि ने प्रभाव साम्य के आधार पर स्वस्थ उपमा की योजना की है। द्वितीय छद मे अतिम दो पक्तियो में उपमा और उत्प्रेक्षा की योजना भी दर्शनीय है। रूपक अलकार के कुछ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे है :

"संसार अपार के पार को, सुगम रुप नवका लयौ ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित, बाल्मीक तुलसी भयौ ॥"

उपर्युक्त पक्तियो मे कवि ने तुलसी के उपदेश एव राम नाम को एक नौका के रूप मे प्रस्तुत किया है और तुलसी को कर्णधार माना है, जो लोगो को इस माध्यम से भवसागर तर जाने का उपदेश करते है। उपमा का उदाहरण एक इस पक्ति मे देखिए :

"भक्तनि संग भगवान नित (ज्यों) गऊ बच्छ गोहन फिरै ।"[३]

राघवदास के चरित्र पर प्रकाश डालता हुआ कवि कहता है कि उन्हें काम, क्रोध आदि अग्नियों की लहर नही व्याप्त हुई, उसी प्रकार जैसे सूर्य किरणों से जल को सोख लेता है और पुन अवसर पर बरसता है। इस तथ्य को कवि ने उपमा अलकार के द्वारा प्रस्तुत किया है .

---

१. भक्तमाल, पृ० ७९१
२. भक्तमाल, पृ० ३१८-१९
३. भक्तमाल, पृ० ४४९

"काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ की लहर न लागी ।
सूरज ज्यौं जल ग्रहै, बहुरि ताही ज्यौं त्यागी ॥"[1]

सम्पूर्ण भक्तों के चरित्र प्रशंसा से पूर्ण हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि कवि ने अत्यन्त भक्ति भाव से कवियों, भक्तों के चरित्र बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णित किये हैं । तुलसी, कबीर आदि भक्तों के चरित्रों में अतिशयोक्ति अलंकारों का रूप स्पष्ट दृष्टिगत होता है ।

कवि नाभादास की कल्पना में मौलिकता, शब्द विन्यास में सरलता, रस में विभोर कर देने की शक्ति, सभी कुछ कवि के प्रतिभा के परिचायक हैं ।

१. भक्तमाल, पृ० ७८९

अष्टम परिच्छेद

भाषा

भाषा का कार्य साहित्यिक दृष्टिकोण से ही नही, वरन् व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वक्ता के विचारों को श्रोता के मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिए भाषा अत्यन्त सरल माध्यम है। भाषा विचार-विनिमय की आधार-शिला है, भावों के व्यक्तीकरण का सुन्दर रूप है। काव्य के मुख्य उपकरणों में भाषा और भाव प्रमुख माने जाते हैं।

भाषा का जन्म मानव सभ्यता के साथ हुआ। भाषा के विना चेतन भी पशु सदृश प्रतीत होता है। मानव के लिए उसके हृदय में उठे हुए भाव अथवा विचारों को व्यंक्त करने के लिए किसी न किसी साधन की आवश्यकता रही होगी और उसी क्षण से भापा अंकुरित होने लगी होगी।

मानव सभ्यता के साथ भाषा का उत्कर्ष, परिमार्जन, परिवर्द्धन और विकास हुआ। क्रमशः मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती गई और उसे नवीन शब्दों की रचना करनी पड़ी। भाषा के विकास के सम्बंध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का प्रस्तुत कथन पठनीय होगा :

"भाषा का आरम्भ कब से हुआ, कैसे हुआ, इसका निश्चित पता नहीं चलता। इस सम्बध में अनुमान के अतिरिक्त और कोई क्रिया सहायक नहीं होती। बच्चे आज दिन, जिस प्रकार भापा सीखते है उसी के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि पुराकाल में मनोगत भावों की अभिव्यक्ति आंगिक चेष्टाओं द्वारा होती रही होगी। आगे चलकर व्यक्त ध्वनियों से भी उस क्रिया में सहायता मिली और अंत में लिखित भापा का उद्भव हुआ।"[1] ईश्वर ने वाणी की अद्भुत और अमोघ शक्ति मनुष्य को दी और उसने उसका विस्तार

१. वाङमय विमर्श, पृ० ४५५

करके यह प्रमाणित कर दिया कि ज्ञानवान मनुष्य ने उसके दान का स सदुपयोग किया ।[१]

भापा हृदय में उठे हुए भावों के व्यक्तीकरण का एक माध्यम है। भाषा का मुख्य कार्य है, विचारों का आदान-प्रदान। भापा का विचारों से अटूट सम्बंध है, किन्तु वाणी के लिए विचारों का होना अधिक महत्त्व नहीं रखता। "'भापा वह साधन है, जिसके द्वारा एक प्राणी दूसरे प्राणी पर अपने विचार-भाव अथवा इच्छा प्रकट करता है।"[२]

साहित्य और भापा का घनिष्ट सम्बंध है। कारण कि बिना साधन अथवा माध्यम के साहित्य के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। साहित्य से हमारा तात्पर्य लिखित साहित्य से है। भापा एक ऐसा साधन है जिससे विचारों को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है। विचारों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने के अनन्तर यदि उसे लिपिबद्ध कर दिया जाय तो, वह साहित्य के अतीत के हज़ारों वर्षों का लेखा-जोखा हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है। जनता की चित्तवृत्तियों के संचित कोष का नाम ही साहित्य है। किन्तु यदि जनता की चित्तवृत्ति को भापा का सहारा न प्राप्त हो तो वह साहित्य कैसे हो जायेगा। अतः साहित्य के लिए भापा अनिवार्य तत्व है। कहानी, कविता, नाटक आदि साहित्य के विभिन्न अंग हैं। साहित्य के इन स्वरूपों के लिए भी भापा आवश्यक है।

जिस समय नाभादास का आविर्भाव हुआ था, उस समय तक कवियों द्वारा हिन्दी भापा को काव्य में मान्यता मिलने लगी थी। उस समय के सभी कवियों ने हिन्दी भापा को अपने काव्य का माध्यम बनाकर, अपनी उदात्त भक्ति से पूर्ण विचार-धारा को जन-जीवन तक पहुँचाया। संस्कृत भापा की क्लिष्टता और दुरूहता से लोग दूर भाग रहे थे। जन-सामान्य में संस्कृत का कोई विशेप आदर न रह गया था, किन्तु समय-समय पर संस्कृत के विद्वान् जनता को संस्कृत की ओर आकर्पित करने के लिए प्रयत्नशील थे।

नाभादास का आविर्भाव काल प्रामाणिक रूप से संवत् १६५७ माना गया है।[3] हिन्दी के इतिहास में नाभादास का युग साहित्य की उन्नति और विकास

---

१. वही, पृ० ४५६

२. डा० बाबू राम सक्सेना : सामान्य-भाषा-विज्ञान, पृ० २

३. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय-विमर्श, पृ० २७२

की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। रामभक्ति और कृष्णभक्ति काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ माँझी गोस्वामी तुलसीदास एवं सूरदास उनके समकालीन थे। 'प्रेम दीवानी' मीरां, संत साहित्य के उज्ज्वल रत्न सुन्दरदास तथा मलूकदास, 'कठिन काव्य के प्रेत' आचार्य केशवदास, सुप्रसिद्ध नीतिकार गंग, बीरबल, अब्दुर्रहीम खानखाना, वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों में नन्ददास, कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, आदि नाभादास के समकालीन सजग और चेतनशील कवि थे। नाभादास के समकालीन उपर्युक्त इन कवियों में कुछ ने अवधी के माध्यम से शांत रस की धारा बहायी और कुछ ने ब्रजभाषा के माध्यम से ब्रह्म के गुणों का गान किया। इन कवियों में गोस्वामी तुलसीदास तथा संत मलूकदास जैसे कवि भी विद्यमान थे जिन्होंने अवधी और ब्रज, दोनों के ही माध्यम से हृदय की अनुभूति व्यक्त की, भारतीय जनता तक पहुँचने का प्रयत्न किया। नाभादास के जन्म से प्रायः २६ वर्ष पूर्व (संवत् १६३१) में 'रामचरितमानस' की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी और कुछ ही समय बाद श्रीराम की 'विमल कथा' को विस्तार देने के साथ यह महान् ग्रन्थ अवधी के प्रचार का आधार भी बना, परन्तु इतना सब होते हुए भी ब्रजभाषा का महत्त्व अवधी से कहीं अधिक था। ब्रजभाषा ही तत्कालीन जनता की भाषा थी। नाभादास ने जनता की इसी भाषा के माध्यम से अपने बहुमूल्य ग्रन्थ 'भक्तमाल' की रचना की। नाभादास से प्रायः तीन शताब्दी पूर्व कबीरदास ने भी इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर जनता की भाषा में अपने काव्य की रचना की थी।

'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' में नाभादास जी की भाषा के सम्बंध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए श्री हरिऔध ने लिखा है :

"वैष्णवों मे इनकी रचनाओं का अच्छा आदर है। इनकी विशेषता यह है कि इन्होंने शृंगार रस से मुख-मोड़ कर भक्ति-रस की धारा बहायी और 'भक्तमाल' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें २०० भक्तों का वर्णन है। अपनी रचना में उन्होंने वैष्णवमात्र को समान दृष्टि से देखा और स्वयं रामभक्त होते हुए भी कृष्णचन्द्र जी के भक्तों में उतनी ही आदर बुद्धि प्रकट की जितनी रामचन्द्र जी के भक्तों में.... उनका ग्रन्थ ब्रजभाषा में लिखा गया है। इसका कारण उसकी सामयिक व्यापकता ही है।"[1]......इनकी भाषा के विषय में कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं ज्ञात होती है। जो नियम साहित्यिक ब्रज-

---

१. हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३४-३५

भाषा का मैं ऊपर लिख आया हूँ, उसका पालन इनकी कविता में अधिकतर पाया जाता है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य मिश्रवंधुने नाभादास जी की भाषा, शैली और लालित्य पर मुग्ध होकर कहा है कि "कविता के अनुसार इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रखेंगे।"[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी भाषा की सराहना करते हुए कहा है कि "अपने गुरु अग्रदास के समान इन्होंने भी रामभक्ति सम्वन्वित कविता की है। व्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और पद्यरचना में अच्छी निपुणता थी।"[३] आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[४] तथा श्री गुलावराय[५] ने भी इनका व्रजभाषा के अच्छे कवियों में उल्लेख किया है।

उपर्युक्त विद्वानों के मतों का परीक्षण करने से नाभादास की भाषा के विषय में सर्वप्रथम यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा आलोच्य कवि, व्रजभाषा का कवि था। उद्धृत कथनों से द्वितीय वात यह निश्चित हो जाती है कि नाभादास का स्थान व्रजभाषा के कवियों में महत्त्वपूर्ण था। आचार्य मिश्रवंधु ने उन्हें 'तोष' कवि का समकक्ष माना है। आचार्य शुक्ल जी जैसे विद्वान् तथा सन्तुलित आलोचक ने 'व्रजभाषा' पर इनका अच्छा अधिकार था, कह कर नाभादास के भाषा-ज्ञान और कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। इन विद्वानों के कथनों में तृतीय वात ध्यान देने योग्य यह है कि नाभादास की व्रजभाषा या काव्य भाषा साहित्यिक या व्याकरण के नियमों द्वारा हर प्रकार से अनुशासित है। जिस व्रजभाषा में काव्य लेखन की परम्परा सैकड़ों वर्षों से चली आ रही थी और जिस व्रजभाषा ने सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, मीरां, रसखान, आदि कवियों को जन्म दिया, उसके विकास की परम्परा में नाभादास का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

महाकवि हरिऔध, आचार्य मिश्रवंधु, आचार्य शुक्ल जी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री गुलावराय, आदि के कथनों पर विचार कर लेने के अनन्तर अव नाभादास की भाषा पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे।

प्रत्येक भाषा के दो रूप होते हैं। प्रथम वह जो जनता द्वारा दैनिक जीवन

---

१. मिश्रवंधु विनोद, भाग १, पृ० ३५९

२. आ० शुक्ल जी : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४८

३. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृ० ७९

४. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्रः वाङ्मय विमर्श, पृ० २७२

रूप बड़ा ही परिष्कृत और प्रभावशाली बन गया है ।

उपर्युक्त उद्धरणो में 'निरखत', 'हरखत', 'विस्तारन' आदि क्रियाओं का भी प्रयोग हुआ है । इनमें से तीनों का ही प्रयोग इस प्रकार हुआ है कि उनकी अपनी विशेषता हर प्रकार से सुरक्षित है । ये संस्कृत के ही शब्द हैं, परन्तु कवि ने अपनी आवश्यकता के अनुसार इन्हें इस प्रकार तोड-मरोड़ लिया है कि वे अपनी विशेषता और मौलिक रूप को सुरक्षित रखे हुए हैं ।

नाभादास की भाषा में देशज और ग्रामीण ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रचुरता के साथ प्रयोग हुआ है । परन्तु वे भाषा के साहित्यिक रूप में किसी प्रकार से बाधक नहीं है । यहाँ पर इस प्रकार के कतिपय शब्दों को उद्धृत करना आवश्यक है :

'भलप्पन', 'वत्तन', 'असोम'[१], 'ठगिया'[२] 'जुरी', 'रहसि', 'पायनि', 'जमल', 'आख्या'[३], 'नोख', 'रीझि'[४], 'पगे', 'सजी', 'तारन'[५], 'ठनै', 'खोयो', 'जिनि', 'परचौ'[६], 'ऊमर', 'थापी'[७], 'तितनेई', 'पधति', 'न्यारी', 'धारयौ', 'तारक', 'बियो', 'जतन'[८], 'जवन', 'सबनि', 'जात', 'भई'[९], 'गाइ', 'दए', 'भए'[१०] । इस प्रकार के शब्दों की सूची बहुत बड़ी हो सकती है । विस्तार के भय से यहाँ पर कथन के समर्थन में कतिपय उद्धरण दिये गए है । इन शब्दों में ग्रामीण भाषा के माधुर्य के साथ ही साथ अर्थ स्वतः स्पष्ट हो जाता है । यही इनकी विशेषता है । ग्रामीण भाषा के शब्दों के प्रयोग से काव्य की भाषा में सरसता और स्वाभाविकता आ जाती है । नाभादास के 'भक्तमाल' की भाषा मे यह सरसता सर्वत्र बनी हुई है।

यहाँ पर प्रश्न यह हो सकता है कि क्या नाभादास काव्य को सर्वगुणों से समलंकृत करके उसे हिन्दी जगत् के समक्ष एक आदर्श ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे या केवल भक्तों के चरित्र-गान के द्वारा भक्तिधारा-प्रवाह में अपूर्व योगदान देना चाहते थे । उत्तर स्पष्ट है नाभादास जी भक्त पहले थे, परन्तु उनकी मौलिकता और काव्य-प्रतिभा के समक्ष ये सभी विशेपताएँ स्वतः नतमस्तक है ।

नाभादास जी की ब्रजभापा संस्कृतनिष्ठ है । 'भक्तमाल' से प्रकट होता है कि कवि को संस्कृत का अच्छा ज्ञान था । प्रस्तुत कथन की सविस्तार व्याख्या

---

१. भक्तमाल, पृ० ७८३ २. वही, पृ० ४६७
३. वही, पृ० ७५१-५२ ४. वही, पृ० ५८१
५. वही, पृ० ५७९ ६. वही, पृ० ६८०
७. वही, पृ० २६३ ८. वही, पृ० २६७
९. वही, पृ० २७७-७८ १०. वही, : ३०४

करने के पूर्व यहाँ कतिपय छंदो को उद्धृत कर देना आवश्यक है :

(१) "गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौ दियौ ।
श्री वल्लभ गुरुदत्त भजनसागर गुनआगर ।
कवित नोख निर्दोष नाथ सेवा मैं नागर ॥
बानी वंदित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत ।
व्रजरज अति आराध्य, वहै धारी, सर्वसु चित ॥
सानिध्य सदा हरिदास वर्य, गौर श्याम दृढ़ व्रत लियौ ।
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौ दियौ ॥"[१]

(२) "(श्री) हरिवंश गुसाँई भजन की, रीति सकृत कोउ जानिहै ॥
(श्री) राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी ।
कुंज केलि दंपति, तहाँ की करत खवासी ॥
सर्वसु महाप्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी ।
विधि निषेध नहि दास अनन्य उतकट व्रतधारी ॥
व्याससुवन पथ अनुसरै, सोई भलै पहिचानिहै ।
(श्री) हरिवंश गुसाँई भजन की, रीति सुकृत कोउ जानिहै ॥"[२]

(३) "श्रीरामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥
अनन्तानन्द, कबीर, सुखा, सुरसुरा पद्मावति, नरहरि ।
पीपा, भावानन्द, रैदास, धना सेन, सुरसुर की धरहरि ॥
औरों शिष्य प्रशिष्य एकते एक उजागर ।
विश्वमंगल आधार सर्वानन्द दशधा के आगर ॥
बहुत काल वपुधारिकै प्रणत जनन कौं पार दियौ ।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥"[3]

(४) 'श्रीरामानुज' पद्धति प्रताप अवनि अमृत ह्वै अनुसरयौ ॥
'देवाचारज' द्वितीय महामहिमा 'हरियानंद' ।
तस्य 'राघवानन्द' भए भक्तन को मानंद ॥
पत्रावलम्ब पृथिवी करी व काशी स्याई ।
चारि वरन आश्रम सबही को भक्ति दृढ़ाई ॥

---

१. भक्तमाल, पृ० ५८१ २. वही, पृ० ६०३-६०४
३. वही, पृ० २८८

तिनके 'रामानन्द' प्रगट, विश्व मंगल जिन्ह् वपु घरचो ।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप अवनि ह्वै अनुसरचो ।।"[१]

(५) "खेमालरतन राठौर कै, सुफल बेलि मीठी फली ।।
हरीदास हरिभक्त भक्ति मंदिर कौ कलसौ ।
भजन भाव परिपक्व, हृदै भागीरथि जलसौ ।।
त्रिधा भाँति अति अनन्य रामकी रीति निवाही ।
हरि गुरु हरि बल भाँति तिनहि सेवा दृढ़ साही ।।
पूरन इन्दु प्रमुदित उदधि, त्यौं दास देखि बाढ़ै रली ।
खेमालरतन राठौर कै, सुफल बेलि मीठी फली ।।"[२]

इन पदों का निर्वाचन विशेष सतर्कता के साथ नहीं किया गया है। इनमें कवि की संस्कृतनिष्ठ भाषा का सुन्दर रूप दर्शनीय है। प्रथम छंद के 'गुनआगर', 'वानी वंदित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत', 'व्रजरज अति आराध्य', 'सर्वसुचित्त', 'सानिध्य सदा हरिदास वर्य', द्वितीय छंद के 'रीति सुकृत', 'रामचरण प्रधान अति सुदृढ', 'कुजकेलि दषति', 'सर्वसु महाप्रसाद प्रसिद्ध अधिकारी', 'विधि निषेध', 'अनन्य उत्कट व्रतधारी', 'सुकृत' तृतीय छंद के 'सेतुजग', 'शिष्य प्रशिष्य एक' 'विश्व मगल आधार सर्वानिन्द दशधा के आगर', 'बहुत काल वपुधारी', 'प्रणत जन', 'सेतु', चतुर्थ छंद के 'श्री रामानुज पद्धति प्रताप अवनि अमृत', 'महामहिमा', 'तस्य', 'पत्रावलम्व पृथ्वी', 'स्थाई', 'विश्वमंगल वपु', तथा पंचम छंद के 'भजन भाव परिपक्व, हृदै भागीरथि जल', 'त्रिधा भाँति अति अनन्य राम की रीति', 'पूरन इन्दु प्रमुदित उदधि' आदि पूर्ण रूप से संस्कृत के शब्द है। इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग अन्य छंदों मे भी हुआ है। नाभादास की कविता में संस्कृत के जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे सब सामाजिक जीवन में नित्यप्रति बोले जाने वाले शब्द है। इनके प्रयोग से भाषा परिष्कृत और स्टैण्डर्ड बन गई है। नाभादास की कविता की संस्कृतनिष्ठ भाषा जनसाधारण में बोली और समझी जाने वाली भाषा है। नाभादास के समकालीन 'राम चंद्रिका' के यशस्वी लेखक आचार्य केशवदास ने भी संस्कृतनिष्ठ भाषा में अपने काव्य ग्रन्थों की रचना की थी, परन्तु दोनों की भाषा मे महान् अन्तर है। नाभादास ने पवित्र एवं कल्याणकारी विषय के अनुकूल पवित्र भाषा देववाणी के सरल शब्दों को लेकर अपनी काव्यधारा को और भी अधिक पुनीत बना दिया है। और दूसरी ओर केशवदास जी ने आचार्यत्व-प्रदर्शन के लिए संस्कृत भाषा लिखी है।

१. भक्तमाल, पृ० २८७-८८ २. वही, पृ० ७४४

नाभादास जी ने 'भक्तमाल' की रचना में संस्कृत के अनेकानेक तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ : आचारज (आचार्य), जगति (जगत) रति (रत)[१] दुतिय (द्वितीय), सेतु (सेत), जनन (जन का बहु वचन), आगर (आगार)[२], अपर्यो (अर्पित किया), निर्वान (निर्वाण)[३], सोती (श्रोत्री), निर्वही (निर्वाह)[४], भागौत (भागवत), दरस (दर्शन), परस (स्पर्श)[५], आचारज (आश्चर्य), साँचो (सत्य), कारज (कार्य)[६], सकलात (सकल), सौच (शौच)[७], परायन (परायण), अगनित (अगणित), उभै (उभय), दिसि (दिश)[८], जनम (जन्म), करम (कर्म), श्रवन (श्रवण), दिष्टि (दृष्टि), परकासी (प्रकाशित), बरन (वर्ण), दिवि (दिव्य)।[९]

इन तद्भव शब्दों का प्रयोग दो दृष्टियों से हुआ है। प्रथम यह कि कवि ने भाषा में स्वाभाविकता लाने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है और दूसरे कहीं-कहीं पर तुकान्त और छंद की शुद्धता के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है।

'भक्तमाल' की रचना खड़ी-बोली के विकास के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। प्रस्तुत ग्रन्थ में खड़ीबोली का सुन्दर विकासमान रूप उपलब्ध होता है। छंदों में क्रियापदों के अतिरिक्त शब्दों की योजना ऐसी हुई है जिनसे खड़ीबोली का पूर्णरूप से आभास मिल जाता है। उदाहरणार्थ कतिपय पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

(१) "(श्री) वल्लभजू के वंश में, सुरतरु गिरिधर भ्राजमान ॥
अर्थ धर्म काम मोक्ष भक्ति अनपायनि दाता।
हस्तामल श्रुति ज्ञान सब ही शास्त्र को ज्ञाता ॥
परिचर्या ब्रजराज कुँवर के मनको कर्षें।
दरशन परम पुनीत सभा तन अमृत वर्षें ॥
विट्ठलेश नंदन सुभाव जग कोऊ नहि ता समान।
(श्री) वल्लभजू के वंश में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान ॥"[१०]

---

१. भक्तमाल, पृ० २७७-७८
२. वही, पृ० २८८
३. वही, पृ० ३०८
४. वही, पृ० ३२८
५. वही, पृ० ४७०
६. वही, पृ० ४७४-७५
७. वही, पृ० ५५७
८. वही, पृ० ५५९-६०
९. वही, पृ० ५६३
१०. वही, पृ० ७८३

(२) "कलि कुटिल जीव निस्तार हित, वालमीक "तुलसी" भयौ ॥
त्रेता काव्य निबंध करिव सतकोटि रमायन ।
इक अक्षर उद्धरै ब्रह्महत्यादि परायन ॥
अव भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला विस्तारी ।
रामचरन रस मत्त रटत अह् निसि व्रतधारी ॥
संसार अपार के पार को, सुगम रूप नवका लयौ ।
कलि कुटिल जीवन निस्तार हित वाल्मीक 'तुलसी' भयौ ॥"[१]

(३) "खेमालरतन राठौर के, अटल भक्ति-आई सदन ॥
'रैना' पर गुण राम भजन भागौत उजागर ।
प्रेमी परम 'किशोर' उदर राजा रतनाकर ॥
हरिदासन के दास, दसा ऊँची ध्वज धारी ।
निर्भै, अननि, उदार, रसिक, जस रसना भारी ॥
दशधा संपति, संत बल, सदा रहत प्रफुलित वदन ।
खेमालरतन राठौर के, अटल भक्ति आई सदन ॥"[२]

(४) "(श्री) बल्लभजू के वंश में गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति ।
उदधिसद अक्षोभ सहज सुन्दर मित भाषी ।
गुरु वत्तन गिरिराज भलप्पन सब जग साषी ॥
विट्ठलेश की भक्ति भयौ वेला दृढ़ ताकें ।
भगवत तेज प्रताप, नमित नरवर पद जाकें ॥
निर्विलीक आसय उदार, भजन पुंज गिरिधरन रति ।
वल्लभजू के वंश में, गुननिधि 'गोकुलनाथ' अति ॥"[३]

इन पदों मे रेखांकित अश विशेष ध्यान देने योग्य है । इनमे खड़ी बोली का विकासमान रूप व्यक्त हुआ है । इन रेखांकित अंशों मे यदि खड़ी बोली के क्रियापदों को रख दिया जाय तो भाषा का रूप खडीबोली से बहुत निकट हो जायेगा । 'भक्तमाल' का अनुमानित रचना-काल लगभग सवत् १७०० है। इस दृष्टि से 'भक्तमाल' खड़ीबोली की विकास यात्रा का एक सीमा-स्तम्भ (Mile Stone) है ।

'भक्तमाल' मे कवि ने उर्दू, फारसी, अरबी आदि शब्दो का भी प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए एक सक्षिप्त सूची दी जा रही है :

१. भक्तमाल, पृ० ७६२ २. वही, पृ० ७३८ ३. वही, पृ० ७८३-८४

(१) खवासी : "कुंज केलि दंपति, तहाँ की करत खवासी ।"[१]

(२) कजी : इस शब्द की व्युत्पत्ति कज़ा शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है चूक हो गई :

"ऋषिराज सोचि कह्यो नारि सों, आज भक्ति मेरी कजी" ।[२]

(३) तुरक : यह शब्द सामान्य रूप से मुसलमान के अर्थ में व्यवहृत होता है।

(४) काजी : "हिन्दू तुरक प्रमान "रमैनी, शबदी, साखी" ।[३]

काजी अजित अनेक देखि परचै मैं भीते ।[४]

(५) दादि : इस शब्द का अर्थ है न्याय अथवा दया

"दई दास की दादि, हुंडी करि फेरि पठायौ ।"[५]

(६) अजीज : इस शब्द का अर्थ है प्रिय या निकट ।

"असुर अजीज अनीति अगिनि मैं हरिपुर कीवौ ।"[६]

(७) नेजा : इस शब्द का अर्थ है भाला ।

"परमभक्ति परताप धर्मध्वज नेजा धारी ।"[७]

(८) सराय : इस शब्द का प्रयोग बहुत प्रचलित है ।

"हंडिया सराय देखत दुनी हरिपुर पदवी को चढचो ।"[८]

उपर्युक्त पंक्ति में 'पदवी' शब्द फ़ारसी से उर्दू में प्रविष्ट हुआ है ।

(९) दुनिया : इस शब्द का अर्थ है संसार (विश्व) ।

'दूबलौ' जाहि दुनिया कहै, सो भक्तभजन मोटौ महंत ।"[९]

किन्तु इस प्रकार के शब्दों की संख्या बहुत अल्प है। नाभादास सम्राट अकबर के समकालीन थे । इनसे प्राय: २०० वर्ष पूर्व से इस्लामी संस्कृति का झंडा देश पर फहरा रहा था । इस कारण 'भक्तमाल' (जैसे जनता और भक्तों के लिए लिखित ग्रन्थ) में इतने उर्दू और फारसी के शब्दों का प्रयोग किसी प्रकार से आश्चर्य-वर्द्धक नहीं है । 'भक्तमाल' के सर्वप्रथम टीकाकार श्री प्रियादास ने भी इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग टीका में किया है । नाभादास जी के समकालीन संतकवि मलूकदास ने अपने स्फुट काव्य में फारसी, अरबी के शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक किया था । मलूकदास की बानी से यहाँ पर (तुलनात्मक अध्ययन के लिए) एक छंद उद्धृत किया जाता है :

---

१. भक्तमाल, पृ० ६०४ २. वही, पृ० ४७२ ३. वही, पृ० ४८५
४. वही, पृ० ५६६ ५. वही, पृ० ६७३ ६. भक्तमाल, पृ० ८०९
७. वही, पृ० ८६७ ८. वही, पृ० ८२७ ९. वही, पृ० ८७७

है हजूर नहि दूर हमा जा भरपूर ।
जाहिर जहान, जाका जहूर पुरनूर ॥
बेसबूत बेनमून बेचगून ओस्त ।
हमा ओस्त हमा अजोस्त जान जानाँ दोस्त ॥
शबो रोज जिकर फिकरही में मशगूल ।
तेरी दरगाह बीच पड़े हैं कबूल ॥
साहब है मेरा पीर कुदरत क्या कहिये।
कहता मलूक बन्दा, तक पनाह रहिये ॥[1]

नाभादास का काव्यादर्श संतों का गुणगान करना था । काव्य की रचना उन्होंने प्रतिभा-प्रदर्शन या काव्य-चातुर्य को प्रदर्शित करने के लिए नहीं की थी। फिर भी नाभादास की भाषा में कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग स्थान-स्थान पर हुआ है । इस प्रकार के प्रयोग बड़े स्वाभाविक और भाषा में शक्ति बढाने वाले प्रमाणित होते हैं । 'भक्तमाल' से यहाँ इस प्रकार के कतिपय उदाहरण उद्धृत किये जाते हैं :

(१) बार न वांकौ भयौ, गरल अमृत ज्यों पियौ[2]
(२) लोक लाज कुल श्रृंखला तजि मीरां गिरिधर भजी[3]
(३) प्रसिद्ध प्रेम की बात[4]
(४) लौलेस न जानै[5]
(५) तनमन धन परिवार सहित सेवत संतन कंह[6]
(६) जो नहिं सिर चालन करै[7]
(७) दुतिय दिवाकर अवतरचो[8]
(८) बिनहि बीज के अंकुर भयौ[9]
(९) जस वितान जग में तन्यो[10]
(१०) ज्यों चन्दन को पवन नींब पुनि चन्दन करई[11]

१. मलूकदास की वानी, पृ० २०
२. वही, पृ० ७१९
३. वही, पृ० ७१८
४. वही, पृ० ७०४
५. वही, पृ० ६७९
६. वही, पृ० ६२७
७. वही, पृ० ५६३
८. वही, पृ० ५७४
९. वही, पृ० ५२७
१०. वही, पृ० ७८८
११. वही, पृ० ७९१

(११) दोष सपनेहू उर नहि आनै[1]

(१२) धर्म की धुजा[2]

नाभादास की 'भक्तमाल' में भाषा का प्रवाह बड़ा सराहनीय है। पाठक शब्दों की सीढ़ियों पर चढता हुआ भावों के बहुमूल्य रत्न को प्राप्त कर लेता है। यह भाषा-प्रवाह प्रायः सम्पूर्ण वर्ण्य-विषय में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए यहाँ दो-तीन पदों को उद्धृत किया जाता है :

(१) "बिदित बात जग जानिये, हरि भये सहायक 'सेन' के ॥
प्रभुदास के काज रूप नापित कौ कीनौ।
छिप्र छुड़हरी गही पानि दर्पन तहं लीनौ ॥
तादृस ह्वै तिहि काल भूप के तेल लगायौ।
उलटि राव भयौ शिष्य प्रगट परचौ जब पायौ ॥
स्याम रहत सनमुख सदा, ज्यों बच्छ हित धेन के।
बिदित बात जग जानिये, हरि भये सहायक 'सेन' के ॥"[3]

(२) "धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥
घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये।
तात मात डर खेत थोथ लांगूल चलाये ॥
आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई ॥
अचरज मानत जगत मे कहुं निपुज्यौ कहुं वै बयौ।
धन्य धना के भजन को, बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥"[4]

(३) "कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥
भक्ति बिमुख जो धर्म सो अधरम करि गायो।
जोग जग्य व्रतदान, भजन बिनु तुच्छ दिखायौ ॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी, शबदी, साखी।
पक्षपात नहिं बचन, सबही के हित की भाखी ॥
आरूढ दसा ह्वै जगतपर, मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट दरसनी ॥"[5]

इन छंदों मे कहीं-कहीं अनुप्रास अलंकार की छटा ने भाषा में प्रवाह का समा-

---

१. भक्तमाल, पृ० ७९० २. वही, पृ० ८४२ ३. भक्तमाल, पृ० ५३१
४. वही, पृ० ५२७ ५. वही, पृ० ४८५

वेश कर दिया है। परन्तु 'भक्तमाल' मे शब्दो की योजना प्रमुख है। इसी शब्द-योजना के कारण भाषा मे प्रभावित करने की शक्ति है। द्वितीय छप्पय की चतुर्थ पंक्ति मे व्यग्य ध्वनि मुखर उठी है।

नाभादास का भाषा और भावाभिव्यक्ति पर अच्छा अधिकार था। कवि ने इच्छानुसार विषय को विस्तार और सक्षिप्तता प्रदान की है। कही-कही पर एक ही भक्त का चरित दो-दो छदो मे व्यक्त किया है और कही-कही दर्जनों संतो का चरित्र एक ही छद मे वर्णित किया गया है। यह कवि की भाषा-शक्ति और भाषाधिकार को प्रमाणित करता है। निम्नलिखित छद मे कवि ने केवल अंगद जी का चरित वर्णित किया है -

"अभिलाष भक्त 'अंगद' कौ पुरुषोत्तम पूरन करचौ ॥
नग अमोल इक, ताहि सबै भूपति मिलि जाचै।
साम, दाम, वहु करै, दास नाहिन मत काचै ॥
एक समै संकट मै, लै वै पानी महि डारयो।
"प्रभो! तिहारी वस्तु", बदन ते वचन उच्चारयो ॥
पाँच दोय सत कोस ते, हरि हीरा लै उर धरयो।
अभिलाष भक्त 'अंगद' को, पुरुषोत्तम पूरन करचौ ॥"[१]

इस चरित मे अनेक विषयो और सदर्भो का उल्लेख करते हुए कवि ने एक कथा का भी वर्णन किया है। पाँच पक्तियो के इस छद मे कवि ने वडी कुशलता के साथ अपने विषय का प्रतिपादन किया है। अब इसके विरुद्ध एक ऐसा छंद देखिये जिसमे कवि ने बाइस भक्तो का चरित एक ही साथ वर्णित किया है:

"गुनगन विसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा ॥
वोहिय, रामगुपाल, कुँवरवर, गोबिन्द, मांडिल।
छीतस्वामी, जसवंत, गदाधर, अनंतानंद भल ॥
हरिनाभमिश्र, दीनदास, बछपाल, कन्हर जसगायन।
गोसू, रामदास, नारद, श्याम पुनि हरिनारायन ॥
कृष्णजीवन, भगवानजन, श्यामदास, बिहारी अमृतदा।
गुन गन विसद गोपाल के एते जन भये भूरिदा ॥"[२]

भाषा की अन्य विशेषताएँ चित्रमयता और सगीत तत्व है। कवि की भाषा इतनी सशक्त है कि वह हमारे सम्मुख अतीत के चरित्रो का केवल लेखा-जोखा ही नही प्रस्तुत करती, वरन् एक पूर्ण चित्र भी चित्रित करने मे समर्थ है। किसी

१. भक्तमाल, पृ० ७०६ २. वही, पृ० ८२९

विशेष चरित्र से सम्बद्ध छप्पय पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह चरित्र स्वतः आकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो गया है। मीरां, केशवभट्ट काश्मीरी आदि के वर्णन ऐसे ही हैं। भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग के कारण संगीत तत्व भी यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध होता है।

नाभादास की भाषा में पाठकों एवं श्रोताओं को प्रभावित करने की शक्ति, भाषा प्रवाह, भाषा की मधुरता आदि गुण विद्यमान हैं। कवि के साहित्य में भाषा सौन्दर्य के निम्नलिखित कारण हैं :

(१) आलोच्य कवि नाभादास ने अपने भावों की अभिव्यंजना का माध्यम दैनिक जीवन में व्यवहृत ब्रजभाषा को बनाया है। इस ब्रजभाषा में खड़ीबोली का विकासशील रूप, अरबी, फ़ारसी, देशज तथा अन्य प्रकार के ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो भाषा की स्वाभाविकता को बढ़ाने में सहायक हैं।

(२) सुन्दर शब्द-योजना, व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग तथा उच्चारण के लिए शब्दों के रूप में यत्किंचित परिवर्तन कर लेने से कवि की भाषा में सराहनीय प्रवाह उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पद देखिये। इसमें 'कवित्त' के स्थान पर 'कवित', 'चलाने' के स्थान पर 'चालन', 'वर्ण' के स्थान पर 'बरन', 'दिव्य' के लिए 'दिवि', 'गुण' की कर्कशता को दबाने के लिए 'गुन' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है :

'सूर' कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै ॥
उक्ति, ओज, अनुप्रास, बरन अस्थिति, अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्‌भुत तुक धारी ॥
प्रतिबिंबित दिवि दिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी ॥
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन श्रवननि धरै।
'सूर' कवित सुनि कौन कवि, जो नहिं सिर चालन करै ॥"

(३) नाभादास की भाषा में शब्द अपेक्षित भावों को प्रकट करने में समर्थ है। उनके शब्द जिस भाव को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं उसे पूर्णतया प्रकट कर देते हैं। पाठकों को दुरूह शब्दों के जाल (या जंजाल) में भटकने की आवश्यकता नहीं है।

(४) कवि की भाषा में सजीवता है। उसमें पाठकों को प्रभावित करने की शक्ति है। भाषा की सजीवता के उदाहरण पीछे पृष्ठों में दिये गए हैं।

नवम परिच्छेद

नाभादास की प्रतीक योजना

विशेष धर्म या गुण के प्रकाशक प्रकृति के कतिपय पदार्थ जो सामान्यतया सब मनुष्यों के हृदय में एक-सी ही भावना जागृत करते हैं, काव्य जगत में 'प्रतीक' कहलाते हैं। प्रतीक या प्रतीकवाद का इतिहास मानव के विकास का इतिहास है। प्रतीक का मूलरूप में उन वस्तुओं से सम्वंध था जो जाति, गुण, क्रिया या अन्य किसी सादृश्य के द्वारा किसी वस्तु विशेष का अथवा व्यक्ति के विचारों का बोध कराती थी। शनैः-शनैः मानव ने अपनी वुद्धि, कल्पना-शक्ति और चिंतन के द्वारा वस्तुओं के सादृश्य सम्बंधी संकेतों से ध्यान हटाकर उनके स्थान पर आरोपित या काल्पनिक भाव की सृष्टि की। राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय गान ये कतिपय ऐसे प्रतीक हैं जिनका लाक्षणिक अर्थ ही मान्य है। राष्ट्रीय झंडा केवल डेढ़ गज टुकड़े का प्रतीक न होकर हमारे देश के अपार जनसमूह के गौरव का प्रतीक है। प्रतीकों का प्रयोग "गागर में सागर" भरने के अभिप्राय से किया गया है। प्रतीक वह वस्तु या वस्तुवोधक तत्व है जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और सव वातों का सूचक या प्रतिनिधि हो। काव्य में अधिकांश प्रतीक वाह्यजगत से ही सम्वद्ध हैं, कारण कि वे सभी के हृदय में एक ही भावना को जागरित करते है।[1]

प्रतीकों के जन्म, विकास और अत्यधिक प्रयुक्त होने के अनेक कारण हैं। प्रतीकों के प्रयोग से अभिव्यक्ति सरल और प्रभावशाली वन जाती है। डा० केसरी नारायण शुक्ल के शव्दों में "ये जानते हैं कि साधारण वक्तव्य की

---

१. The term given to a visible object representing to the mind of semblance of something which is not shown but realized with it.

Encyclopaedia Britanica (1947), p. 700

अपेक्षा प्रतीकों के द्वारा सत्य को अधिक प्रभावोत्पादक, मार्मिक और संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है। ये जानते हैं कि प्रतीकों का प्रयोजन उपादेयात्मक नहीं है। इनका उद्देश्य सत्य को सौदर्य से समन्वित करना है। ये यह भी जानते हैं कि काव्य में प्रतीकों का उद्देश्य केवल सजावट नही है, प्रत्युत ये काव्य के आधारभूत अंश हैं। केवल कवि के भावावेश में उद्भूत प्रतीक ही पाठकों में वैसी भावना जगाने में समर्थ होते हैं। ऊपरी बुद्धि द्वारा सजावट के लिए गढ़े हुए प्रतीकों का विश्लेषण करने पर उनमें सच्ची सौदर्य भावना का अभाव और शिथिलता लक्षित होती है। सुन्दर लय के समान सौदर्यपूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक होते हैं। इन प्रतीकों का अपने देश की परम्परा, इतिहास, जलवायु तथा जाति के आचार-विचार से घनिष्ट सम्वंध होता है। प्रत्येक देश के प्रतीकों का अपना समूह होता है जिनके द्वारा देशवासी अपने सुख-दुःख, मृत्यु, स्वर्ग, नरक आदि की भावना को प्रकट करते हैं।[1] डाक्टर फ्रायड का मत है कि आत्मा की भाषा रूपकों और प्रतीकों के द्वारा ही व्यक्त हो सकती है।[2]

प्रतीकों के भेद दो प्रकार से किये गए हैं। कुछ विचारकों का मत है कि प्रतीकों के दो प्रमुख भेद हैं प्रभावोत्पादक प्रतीक या इमोशनल सिंबल तथा विचारोत्पादक या इंटलेक्चुवल सिंबल। अंडरहिल ने प्रतीकों के तीन वर्गो का उल्लेख किया है, ये इस प्रकार है (क) संसार के मायाजाल से मुक्त मानव सत्यान्वेषण करता है, इस दृष्टि से मनुष्य है। (ख) दूसरी अवस्था में आत्मा और परमात्मा के हार्दिक मिलन की अभिलाषा है। (ग) तृतीय वर्ग के अन्तर्गत नैतिक जीवन से सम्बद्ध भावनाएँ आती है।

प्रतीको का प्रयोग इस देश के लिए कोई नवीन बात नही है। निर्गुण ब्रह्म की सूक्ष्म भावना को हृदयंगम कराने के लिए जिन मूर्त रूपों का आश्रय लेना अनिवार्य होता है वे प्रतीक की ही संज्ञा से विभूषित हैं।[3] हमारे वेद, शास्त्र और अन्य प्राचीन ग्रन्थो मे स्थान-स्थान पर प्रतीको की स्थापना की गई है। स्वामी विवेकानन्द के मत से प्रतीक वे वस्तुएँ है जो किसी-न-किसी अंश तक ब्रह्म के स्थान मे उपास्य कही जा सकती हैं। प्रतीको का प्रयोग भक्ति-काव्य,

१. आधुनिक काव्यधारा, पृ० २१७

२. डा० रामकुमार वर्मा : कबीर का रहस्यवाद, पृ० ३३

३. सय नाम ब्रह्मत्युपास्ते इत्येवमादिषु प्रतीकोपासनेषु संशयः (ब्रह्मसूत्र)

रहस्यवादी कविता, प्रेम एवं प्रकृति-चित्रण विषयक काव्य में अधिक हुआ है। हिन्दी के संत-काव्य या निर्गुण-धारा में प्रतीकों का प्रयोग बाहुल्य के साथ हुआ है। संतों की 'बहुरिया' जीवात्मा का तथा संतों का 'भरतार' परमात्मा का प्रतीक है। संतों ने अपनी अनुभूति को जनसाधारण तक पहुँचाने का माध्यम प्रतीकों को बनाया है।

"माली आवत देखि के कलियन करी पुकार।
फूले फूले चुनि लिए कालिह हमारी बारि ॥"

प्रस्तुत 'साखी' मे कितनी सरल, भाषा-शैली मे कबीरदास जी ने जीवन की क्षणभंगुरता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। यहाँ पर 'माली" ' काल' का प्रतीक है, 'कलियाँ' जीव के लिए प्रयोग में आयी है। कबीर की परम्परा में अन्य संतों ने भी सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग किया है।

सूफी-साहित्य मे प्रतीकों की सुन्दर व्यंजना हुई है। चन्द्रबली पांडेय जीने लिखा है कि प्रतीक ही सूफ़ी साहित्य के राजा है। उनकी अनुभूति के विना सूफ़ियो के क्षेत्र में पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीकों के महत्त्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज हो जाती है।"[१] सूफ़ी कवियों में प्रतीक योजना की दृष्टि से जायसी के अनन्तर विशेष उल्लेखनीय हैं नूर मुहम्मद, शेख रहीम, कासिमशाह तथा उसमान।[२]

अब नाभादास की प्रतीक योजना की ओर ध्यान देना चाहिए। नाभादास की प्रतीक योजना का लक्ष्य है विषय को प्रभावशाली और स्पष्ट बनाना। प्रयुक्त प्रतीकों के माध्यम से हमारे कवि ने अपने हृदय की श्रद्धा भावना को भी साकार बनाने का प्रयत्न किया है। 'भक्तमाल' की प्रतीक योजना बडी विस्तृत है। उन्होने प्रतीकों की रचना करने के लिए चन्द्र, सूर्य, रत्नाकर, कमल, सुरसरि, सेतु, सुधा, जलधर, दीपक, कामधेनु, पादप, चिन्तामणि, कल्पतरु, नौका, पारस आदि प्राकृतिक तत्वों की सहायता ली है। इन सभी के पर्यायों का प्रयोग भी कवि ने प्रचुरता के साथ किया है। इन प्रतीको की पुनरावृत्ति भी कवि ने बराबर अनेक प्रकार से की है।

'भक्तमाल' मे सूर्य को प्रतीक के रूप मे दिनकर, दिवाकर, सूर्य, सूरज

१. शंकरभाष्य ४।१।५ (स्वामी विवेकानन्द कृत भक्तियोग से उद्धृत)
२. तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० ९७
३. डा० सरला शुक्ला: जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफ़ी कवि और काव्य, पृ० २१३-२६

आदि शब्दों के रूप में प्रायः दस अवसरों पर प्रयोग किया गया है। इनमें से तीन स्थल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। एक स्थल पर कवि ने पयहारी कृष्ण-दास के गुणों का गान करते हुए उन्हें "दाहिमा वंश दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियौ" कहा है।[१] श्री दिवाकर को कवि ने "अज्ञान ध्वांत अंतहि करन दुतिय दिवाकर अवतर्यौ" कहा है।[२] इसी प्रकार श्री सोती जी को पृथ्वी मंडल के दूसरे दिवाकर रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है।[३] स्वामी अनंत श्री रामानुज जी की प्रशंसा करते हुए नाभादास ने कहा है, "यामुन मुनि रामानुज तिमिर हरन उदय भान।"[४] सूर्य को प्रतीक के रूप में ग्रहण अनेक स्थलों पर किया गया है। ये सभी प्रतीक अज्ञान-तिमिर को नाश करने के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

'सागर' प्रतीक के रूप में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। 'सागर' के प्रायः चार-पाँच पर्यायों का कवि ने अनेक बार उल्लेख किया है। ये पर्याय हैं रत्नाकर[५], सागर[६], सिंधु[७], समुद्र[८] तथा उदधि[९]। 'सागर' का प्रतीक के रूप में कहीं हृदय की गंभीरता के लिए प्रयोग हुआ है और कहीं पर भक्ति की गंभीरता व्यक्त करने के लिए। कवि ने भागवत को भी एक महान् उदधि माना है।

गिरा या वाणी के लिए नाभादास ने दो प्रतीकों का प्रयोग किया है। ये प्रतीक हैं गंगा[१०] और जलंधर[११]। ज्ञानदेव जी की प्रशंसा करते हुए हमारे कवि ने कहा है "गिरा गंग उनहारि काव्य रचना प्रेमाकर"[१२] तथा श्री कृष्णदास चालक के सम्बंध में कहा है कि, "गिरिराज धरन" की छाप गिराजलधर ज्यों गाजै।"[१३] इन दोनों स्थलों पर ये प्रतीक बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं।

कमल कवि का सर्वप्रिय प्रतीक है। इसके लिए कमल के अन्य पर्याय भी प्रयुक्त हुए हैं यथा पंकज[१४], पद्म[१५], सरसिज[१६], सरोज[१७], कमल[१८]। कमल

१. भक्तमाल, पृ० ३०८
२. वही, पृ० ५७४
३. वही, पृ० ८६७
४. वही, पृ० २६७
५. वही, पृ० २०२
६. वही, पृ० २३८, ३४९, ४६८
७. वही, पृ० ३०४, ५९५
८. वही, पृ० ३८४, ५४२
९. वही, पृ० ७४४
१०. वही, पृ० ३८६
११. वही, पृ० ७४९
१२. वही, पृ० ३८६
१३. वही, पृ० ७४९
१४. वही, पृ० १४०
१५. वही, पृ० २०४
१६. वही, पृ० २३७
१७. वही, पृ० ३०८
१८. वही, पृ० ३०८, ४६७, ७८२

के ये पर्याय दो वस्तुओ के लिए प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त हुए है प्रथम नेत्रों और द्वितीय चरणो के लिए। ये दोनों ही प्रतीक परम्परा से प्रयोग मे आ रहे है।

अमृत के पर्याय सुधा और पीयूष का प्रतीक रूप मे प्रयोग दो स्थलो पर कवि ने किया है। 'सुधा' का प्रयोग 'भक्तिसुधा' के अर्थ मे और पीयूष का प्रयोग 'प्रेम पीयूष' के लिए कवि ने किया है।[१] सुधा का प्रयोग 'भागवत सुधा' के लिए हुआ है।[२]

वृक्षो की उदारता जगत-विदित है। कवि ने उनकी उदारता भक्तों के चरित्र मे आरोपित की है। इसलिए भक्त भी प्रतीक बन कर आए है। वृक्षो के पर्याय पेड़[३] और पादप[४] का उल्लेख दो स्थलो पर हुआ है। एक स्थान पर कवि ने श्रीरामानुजा को "अवनि कल्पतरु" के रूप मे उल्लिखित किया है।[५]

भक्तो के व्यक्तित्व को सम्मानित करने के लिए नाभादास ने उन्हे सेतु[६], मेघ[७], पारस[८], मुकुट[९], कामधेनु[१०], चिन्तामणि[११], दीपक[१२], इन्दु[१३], नौका[१४] आदि के रूप मे व्यक्त किया है। वास्तव मे उदाराशय भक्तो का चरित्र सर्वगुण सम्पन्न होता है। ये प्रतीक उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक है।

नाभादास के कतिपय और प्रतीक बडे रोचक है यथा अज्ञान कुहर[१५], कीरत धन[१७], नाममहानिधि[१८], सदेह ग्रन्थि[१९], तम भ्रम[२०], पाप तापनि[२१], अज्ञान तिमिर[२२], भक्ति कमान[२३], प्रेमनिधि[२४], साँच सदन तथा संत शिखंडी।

नाभादास की प्रतीक योजना उनके सामान्य ज्ञान और विस्तृत अनुभव की सूचक है।

---

१. भक्तमाल, पृ० ५४२
२. वही, पृ० ६२७
३. वही, पृ० ७९३
४. वही, पृ० ६४१
५. वही, पृ० ६४१
६. वही, पृ० २६७
७. वही, पृ० २७७ २८८
८. वही, पृ० २६३
९. वही, पृ० ५३३
१०. वही, पृ० ५८७
११. वही, पृ० ८२५
१२. वही, पृ० ७४४
१३. वही, पृ० ७६२
१४. वही, पृ० २६३
१५. वही, पृ० ३०४
१६. वही, पृ० ५३९
१७. वही, पृ० ४७६
१८. वही, पृ० ५७०
१९. वही, पृ० ५६५
२०. वही, पृ० ७३०
२१. वही, पृ० ७३८
२२. वही, पृ० ८४९
२३. वही, पृ० ८४९
२४. वही, पृ० ७४९

दशम परिच्छेद

भक्तमाल की परम्परा

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्तमाल' की रचना एक ऐतिहासिक घटना है। धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान देश होने के कारण भारतवर्ष में भक्तमाल अत्यधिक जनप्रिय और समाज में समादरित ग्रन्थ बन गया। 'भक्तमाल' की जनप्रियता का अनुमान केवल इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि (रामचरित मानस को छोड़कर) जितनी टीकाएँ इस ग्रन्थ की लिखी गईं और जितने स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना 'भक्तमाल' के आदर्श पर की गई उतने किसी अन्य ग्रन्थ के आधार पर नहीं। हिन्दी का शायद ही कोई ऐसा पुस्तकालय हो जिसमें भक्तमाल की प्रति न विद्यमान हो। साहित्य और धर्म दोनों ने 'भक्तमाल' का स्वागत समान उत्साह के साथ किया।

'भक्तमाल' की परम्परा में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इनको हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :

(१) प्रकाशित भक्तमाल (२) अप्रकाशित भक्तमाल

सबसे पहले हम प्रकाशित भक्तमालों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करेंगे।

भक्तनामावली

नाभादास-कृत भक्तमाल की परम्परा में 'भक्तनामावली' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसके लेखक सुप्रसिद्ध गोस्वामी हित हरिवंश जी के शिष्य ध्रुवदास जी थे। इस ग्रन्थ की रचना ११४ छंदों में सम्पन्न हुई है। इस ग्रन्थ में १२३ भक्तों के नाम एवं चरित्र का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन हुआ है। कवि ने गोस्वामी हित हरिवंश, स्वामी हरिदास, गोस्वामी विट्ठलनाथ, गोविन्द स्वामी, नागरीदास, नन्ददास, मीरां, सूरदास, कबीर, रैदास, रामानन्द तथा छीत स्वामी

का यशोगान बड़े सुन्दर शब्दों में किया है। इन कवियों का चरित्र और यश का वर्णन बहुत संक्षेप में हुआ। उदाहरणार्थ यहाँ पर दो छंद उद्धृत किये जाते हैं। इन छंदों में ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि का ध्यान न तो काव्य-सौष्ठव पर है, न शब्द-योजना और न छंदों की शुद्धता आदि पर। कवि का ध्यान विशेष रूप से भक्तों के उल्लेख पर ही केन्द्रित है। एक ही छंद में चार-चार, छह-छह भक्तों का वर्णन कर दिया गया है :

१. **गोविंद स्वामी गंग अरु विष्णु बिचित्र बनाइ।**
पिय प्यारी को जस कह्यौ राग रंग सो गाइ॥[1]

२. **विहारिदास, दंपति, जुगल, माधौ, परमानन्द।**
वृन्दावन नीके रहे काटि जगत को फन्द॥[2]

इस ग्रन्थ का रचना-काल निश्चित नहीं है। इसके संपादक बाबू राधाकृष्ण दास थे। इसका प्रथम बार मुद्रण इंडियन प्रेस प्रयाग से सन् १९२८ ई० में हुआ था।

भक्तमाला

नाभादास-कृत 'भक्तमाल' की परम्परा में महाराज रघुराज सिंह जू देव रचित 'भक्तमाला' सर्वाधिक जनप्रिय और महत्त्वपूर्ण रचना है। महाराज रघुराज सिंह का परिचय साहित्य-प्रेमियों को विदित ही है। वे रीवाँ के नरेश थे। इस ग्रन्थ में २९४ भक्तों के चरित्र वर्णित हुए हैं। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि कवि की दृष्टि उन कवियों पर भी गई है जिन्हें भक्तमाल में स्थान नहीं मिला था। इन कवियों में उल्लेखनीय हैं मुकुन्दाचार्य, उर्मिलादास, कंगाल दास, मलूकदास, श्यामदास, चरणदास, मंगलदास, रामदास, अनंतदास, तृतीय रामदास, रामसेवक, श्रीकृष्णदास, गोपीचरण, तुलाराम, चतुर दास, हिम्मतिदास, पर्वतदास, भगवानदास, कृष्णदास, रामसखे। इनके अतिरिक्त परम्परागत चरित्रों की ओर भी लेखक ने सविस्तार विचार किया है। इस दृष्टि से कवि ने तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीरदास, नन्ददास तथा अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। ग्रन्थ की रचना दोहा, चौपाई छंदों में हुई है। कुछ चरित्रों का वर्णन कवि ने बहुत विस्तार के साथ किया है उदाहरणार्थ सुरथ सुधन्वा का चरित्र १६ पृष्ठों में व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार प्रसिद्ध भक्त जयदेव का वर्णन

---

१. भक्तनामावली, पृ० ४   २. वही, पृ० ७

१६ पृष्ठों में सम्पन्न हुआ है। पीपा जैसे भक्तों का चरित्र भी लगभग १८ पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। भाषा तथा शैली सरल और रोचक है। उदाहरणार्थ यहाँ तुलसीदास के चरित्र से कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है:

राजापुर यमुना के तीरा। तुलसी तहां बसै मतिधीरा ॥
पंडित सकल शास्त्र विज्ञाता। विद्या में विश्वास अघाता ॥
भो विवाह आई जब नारी। तासो अतिशय नेह पसारी ॥
आयो तियहिं लिवावन भाई। करी न तुलसी तियहिं बिदाई ॥
नैहर हित बिरिया बिरझानी। तदपि न कह्यौ तासु कछु मानी ॥[1]

ग्रन्थ का रचनाकाल निम्नलिखित है:

उनइस सैं यक विंशती, संवत आश्विनि मास।
शुक्ल सप्तमी वार गुरु, कीन्हो विमल प्रकाश ॥

ग्रन्थ की रचना १०७९ पृष्ठों में हुई है। इसका प्रकाशन चतुर्थ वार श्री वेंकटेश्वर प्रेस से संवत् १९७१ में हुआ था।

भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका

भक्तमाल की परम्परा में लिखित और प्रकाशित 'भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका' अपनी कोटि की महत्वपूर्ण रचना है। इसके रचयिता मुरादाबाद के दीनदारपुरा निवासी पं० ज्वाला प्रसाद जी मिश्र हैं। ग्रन्थ की भूमिका में लेखक ने कहा है कि "यही विचार कर नाभा जी ने पुराणो से और उस समय तक के और भक्तों के चरित्रों से एक भक्तमाल नामक ग्रन्थ निर्माण किया जिसका कई भाँति से विस्तार हो गया है।... परन्तु हाँ यह वात है कि मनुष्यों को भक्ति उत्पन्न करने के लिए यही वहुत है। इस कारण इस समय की प्रचलित भक्तमाल का भी प्रचार सर्वसाधारण के लिए वहुत उपयोगी है।" इस ग्रन्थ में २०७ भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। इस ग्रन्थ की रचना गद्य मे हुई है। गद्य का एक उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जाता है:

"नन्ददास जी चन्द्रहास्य के पुत्र ब्राह्मण वर्ण रामपुर के वासी भगवान के भक्त और प्रेमी थे भजन और स्मरण के सिवाय कुछ प्रयोजन उनको न था, उनके वनाये हुए ग्रन्थ वेहुत है।... उनकी कविता मे कवीश्वरो के यह वचन है कि

१. भक्तमाला, पृ० ७८२-८३

"और सब घड़िया नन्ददास जड़िया" अर्थात् जड़ाऊ ऐसे मनोहर वृतान्त लिखे हैं कि निश्चय करके भगवान् के प्रेम से उनका मन उमड़ता है।"[1]

इस ग्रन्थ में विशेष रूप से स्वामी रामानन्द की कथा, वल्लभाचार्य की कथा, हित हरिवंश की कथा, नन्ददास की कथा, तुलसीदास की कथा, सूरदास की कथा, परमानन्द जी की कथा, रैदास की कथा वर्णित हुई हैं।

'भक्तमाल हरि भक्त प्रकाशिका' की सामग्री का प्रसार ७६५ पृष्ठों मे हुआ है। इसका प्रकाशन संवत् १९८१ में लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस से हुआ था।

उत्तरार्ध भक्तमाल

श्रीनाभादास की परम्परा मे लिखित समस्त भक्तमालों में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र-कृत 'उत्तरार्ध भक्तमाल' का विशेष महत्व है। इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा महत्व यह है कि इसकी रचना एक ऐसे व्यक्ति (भारतेन्दु जी) द्वारा सम्पन्न हुई जो साहित्यिक जगत मे युगप्रवर्तक व्यक्तित्व का अधिकारी है और भक्तों के जगत में भी वह परम वैष्णव माना जाता है। भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व साहित्य, धर्म, राजनीति, भाषा आन्दोलन तथा 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान' के आन्दोलनों मे विशेष महत्व रखता है।

भारतेन्दु लिखित प्रस्तुत भक्तमाल की रचना प्रायः २१० छंदों में सम्पन्न हुई है। भारतेन्दु जी ने इस ग्रन्थ के उपक्रम मे लिखा है :

"नाभा जी महाराज ने भक्तमाल रस जाल।
आलबाल हरि प्रेम की बिरची होइ दयाल॥
ता पाछे अब लौं भए जे हरि पद रत संत।
तिनके जस बरनन करत सोइ हरि कहं अति कंत॥
कबहूं कबहुं प्रसंग बस फिर सों प्रेमी नाम।
ऐहैं या नव ग्रन्थ मे पूरब कथित ललाम॥
भक्तमाल जो ग्रन्थ है नाभा रचित विचित्र।
ताहि को एहि जानियों उत्तर भाग पवित्र॥
भक्तमाल उत्तर अरध याही सों सुभ नाम।
गुथी प्रेम की डोर में संत रतन अभिराम॥[2]

१. भक्तमाल हरिभक्ति प्रकाशिका, पृ० २२३-२४
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खंड, प्रथम संस्करण, पृ० २२६

इस उद्धरण की अन्तिम चार पंक्तियों में लेखक ने 'भक्तमाल' की रचना के कारण और प्रेरणा के आधार का उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ में वर्ण्य-विषय के साथ ही साथ लेखक ने भाषा पर भी विशेष ध्यान दिया है। इसकी साहित्यिक ब्रजभाषा है। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

श्री तुलसिदास परताप तें नीच ऊँच सब हरि भजे।
नन्ददास अग्रज द्विज-कुल मति गुन-गन मंडित।
कवि हरिजस गायक प्रेमी परमारथ पंडित॥
रामायन रचि राम भक्ति जग थिर करि राखी।
थोरे में बहु कह्यौ जगत सब याको साखी॥
जग लीन दीनहूँ जा कृपा बल न राम चरिताही तजे।
श्री तुलसिदास परताप तें नीच ऊंच सब हरि भजे॥[1]

'भक्तमाल' का रचनाकाल कविवर भारतेन्दु के शब्दों में ही निम्नलिखित है :

उनइस सै तैंतीस वर, संवत भादों मास।
पूनो सुभ ससि दिन कियो भक्त चरित्र प्रकास॥

इस ग्रन्थ की रचना दोहा और छप्पय छंदों में हुई है।

'भक्तमाल की परम्परा में अनेक ऐसे ग्रन्थों की रचना हुई जिनके लेखकों ने नाभादास के महत्वपूर्ण ग्रन्थ के नाम को ही अपना लिया है। इस परम्परा में श्री प्रताप सिंह लिखित 'भक्तमाल' भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ की रचना २६ शीर्षकों में हुई है। इनमें से प्रथम और अंतिम परिच्छेदों में क्रमशः मंगलाचरण एवं भगवत् की महिमा तथा 'अन्य वृतान्त प्रयोजनीय' वर्णित हुआ है और शेष २४ परिच्छेदों में २४ निष्ठाओं के अन्तर्गत २५८ भक्तों का चरित्र वर्णित हुआ है। इस ग्रन्थ में वर्णित भक्तों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं रामानन्द, हितहरिवंश, नन्ददास, तुलसीदास, सूरदास, रसखान, कबीर, ज्ञानदेव, पीपा, रैदास, मीरांबाई, अग्रदास तथा चतुर्भुज दास। इस ग्रन्थ की रचना गद्य में हुई। उदाहरणार्थ यहाँ कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं।

"कबीर जी काशी में भगवद्भक्त ऐसे हुए कि जिनकी भक्ति और प्रताप जगत् में विख्यात है जिन्होंने भगवद्भक्ति से व्यतिरिक्त कर्म को अधर्म जाना अर्थात् योग, दान व व्रत इत्यादि बिना भगवद्भजन व भाव के वृथा समझा

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खंड, पृ० २६१

और निश्चय करके शास्त्रों का भी यह ही अभिप्राय व सिद्धान्त है कि और साधन शून्य के सदृश है और कृष्णनाम अंक के सदृश है।"[1]

इस ग्रन्थ के सम्पादक आगरा निवासी पं० कालीचरण हैं। इसका प्रकाशन लखनऊ के प्रसिद्ध नवल किशोर प्रेस से हुआ है। सन् १९२२ ई० में इसका दशम संस्करण प्रकाशित हुआ।

अप्रकाशित भक्तमालों की सूची

अप्रकाशित भक्तमालों या भक्तमाल की परम्परा में लिखित अन्य ग्रन्थ अनेक संग्रहालयों अथवा पुस्तकालयों में उपलब्ध हुए हैं। इन संग्रहालयों की सूची निम्नलिखित है :

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
२. सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर।
३. श्री अगरचन्द नहटा का निजी संग्रहालय।
४. श्री गणेशदत्त मिश्र (दिल्ली) का व्यक्तिगत संग्रहालय।
५. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी का संग्रह।
६. विविध

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में प्राप्त 'भक्तमाल' एवं भक्तमाल की परम्परा में लिखित ग्रन्थों की सूची निम्नांकित है :

	ग्रन्थ	ग्रन्थकार	स्थिति	लिपिकाल	विशेष
१.	भक्तमाल सटीक	नाभादास	पूर्ण	१९२१ वि०	प्रियादास की टीका पर हुलास दास की उपटीका।
२.	,,	,,	अपूर्ण		
३.	,,	,,	पूर्ण		
४.	,,	,,	पूर्ण		
५.	,,	,,	अपूर्ण		
६.	,,	,,	अपूर्ण		
७.	,,	,,	अपूर्ण		
८.	,,	,,	अपूर्ण		
९.	भक्तमाल रसबोधिनी	अग्रनारायण	अपूर्ण	१८३३ वि०	प्रियादास की टीका पर वैष्णवदास की उपटीका।

---

१. श्री प्रताप सिंह : भक्तमाल, पृ० २२०-२१

सरस्वती भंडार; उदयपुर

१. नाभादास कृत भक्तमाल, टीकाकार प्रियादास, पूर्ण
२. नाभादास कृत भक्तमाल, वालक राम की विस्तृत टीका, पूर्ण

दादू महाविद्यालय, मोती डूगरी, जयपुर

१. नाभादास कृत भक्तमाल, पूर्ण
२. नाभादास कृत भक्तमाल, टीकाकार प्रियादास, पूर्ण
३. भक्तमाल दादू पंथी संतों की

विश्वेश्वरानन्द संस्थान साधु आश्रम, होशियारपुर

१. भक्तमाल, पृष्ठ संख्या १९१, रचनाकाल १८४४, लेखक चरणदासी सम्प्रदाय के संत नित्यानन्द
२. भक्तमाल, नाभादास कृतं प्रियादास की टीका सहित।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में उपलब्ध सामग्री

१. भक्तविरुदावली...फर्स्ट टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास, १९०६, १९०७, १९०८, पृ० २८७
२. भक्तमाला माहात्म्य फर्स्ट टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास, १९०६, १९०७, १९०८, पृ० २४७
३. भक्तमंजरी...ले० दीनानाथ, सेकेंड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रवंधु, १९०१—१९१४, पृ० २२
४. भक्तमाला, ले० चरनदास, थर्ड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रवंधु, १९०१—१९१४, पृ० ५२
५. भक्तमाल की टिप्पणी, ले० जमाल, थर्ड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रवंधु, १९०१—१९१४, पृ० ११३
६. भक्तमाल माहात्म्य, ले० पुरुषोत्तम, थर्ड टेरिनियल रिपोर्ट, सम्पादक मिश्रवंधु, १९०१—१९१४, पृ० १६९
७. भक्तनामावली, ले० ध्रुवदास संवत् १६८१, प्राप्ति स्थान भारतेन्दु जी का संग्रहालय, सर्चकार हिंदी मैनुस्क्रिप्टस, डा० दास, पृ० २५
८. भक्तरसमाला, लेखक ब्रजजीवनदास-कृत, नि० का० स० १९१४। लिपिकाल सं० १९१४ नाभाजी की टीका।

हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृ० १४

रायल एशियाटिक आफ बंगाल की सामग्री

१. भक्तमाल-प्रसंग—ले० वैष्णवदास । प्रतिलिपिकाल १८२९

महन्त हनुमान प्रसाद, मलूकदासी सम्प्रदाय की गद्दी की सामग्री

१. भक्त बच्छावली, ले० मलूकदास, पृ० १०
२. भक्तचरितावली, ले० मथुरादास, पृ० १९

श्री गणेशदत्त मिश्र (दिल्ली) का संग्रह

१. भक्तचरनामृत, ले० सुंदर संत
२. पद प्रसंग माला, ले० राजा नागरीदास.

डा० रामकुमार वर्मा का संग्रह

संतमाल, ले० चन्ददास, संत कवि

श्री अगरचन्द नाहटा का संग्रह

१. भक्तमाल नाभादास, टीका प्रियादास
२. " " " "

इस प्रकार भक्तमाल की परम्परा वड़ी विशाल, वड़ी महान और वड़ी व्यापक है। इसी परम्परा में आज की प्रसिद्ध पत्रिका 'कल्याण' के निम्नलिखित अंक भी ग्रहण किए जा सकते हैं :

१. कल्याण का संतांक
२. कल्याण का संतवाणी अंक
३. कल्याण का योगांक

'भक्तमाल' की परम्परा का, इसी प्रकार अनन्तकाल तक जीवित रहना परमावश्यक है। यह परम्परा हमारे हृदय में भक्ति, शील, विश्व-बन्धुत्व एवं औदार्य जैसे गुणों को जन्म देती रहेगी और हम अच्छे नागरिक वनने के वातावरण में जीवन को उच्च और उदात्त वनाते रहेंगे।

उपसंहार

'भक्तमाल' हिन्दी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका महत्त्व दो दृष्टियों से अंकित किया जा सकता है। 'भक्तमाल' हिन्दी-जीवनी साहित्य की विकास यात्रा का महत्त्वपूर्ण सीमा-स्तम्भ (माइल स्टोन) है। इससे पूर्व इस दिशा में इस प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। 'भक्तमाल' ने हमारे समक्ष २०० ऐसे कवियों और भक्तों का चरित्र लिखित रूप में उपस्थित किया जो कभी भी मानव विस्मृति के अंधकारपूर्ण गर्त में पड़कर विलीन हो सकते थे। 'भक्तमाल' ने उन्हें स्थायित्व प्रदान किया और कीर्ति और यश के द्वारा चिरंजीवी बनाया। इतना ही नहीं,'भक्तमाल' के द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन गौरवपूर्ण संस्कृति और संस्कृति के आलोक स्तम्भ भक्तों का चरित्र अक्षुण्ण और चिरस्मरणीय बना दिया गया। इतना ही नहीं भक्तमाल का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि इस ग्रन्थ रत्न ने भारतीय जनता के समक्ष उज्ज्वल और उदात्त चरित्रों को व्यक्त करके सत्य, दया, विश्व-बंधुत्व के उन आदर्शों का प्रचार किया जिनके द्वारा कोई भी व्यक्ति आदर्श नागरिक बन सकता है। 'भक्तमाल' का प्रभाव बड़ा व्यापक और गहरा रहा। प्रमाण के रूप में एक ही तर्क को उपस्थित करके हम संतोष कर सकते हैं। 'भक्तमाल' की परम्परा में जितने भक्तमालों की रचना हुई और जितनी टीकाएँ हुईं उतनी 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त अन्य किसी रचना की नहीं हुईं। 'भक्तमाल' का यह असाधारण महत्त्व है। इस दृष्टि से 'भक्तमाल' का महत्त्व कभी भी क्षीण नहीं होगा। इस प्रकार 'भक्तमाल' का महत्त्व साहित्यिक और धार्मिक दृष्टियों से बड़ा महान है।

'भक्तमाल' सैकड़ों वर्षों से भारतीय जनता को कल्याण-पथ पर अग्रसर करता आ रहा है और आगे भी करता रहेगा। इसमें ऐसे ऐसे चरित्रों का वर्णन है जो विरोधी परिस्थितियों में साधना-पथ पर बढ़ते हुए मुक्ति के भागी हुए। इसमें ऐसे चरित्रों की अभिव्यक्ति है जो पहले अपनी निम्न प्रवृत्तियों के कारण काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ के वश थे, परन्तु सचेत हो जाने के बाद साधना के द्वारा

देवत्व को प्राप्त करने में सफल हुए। इसमें ऐसे भी चरित्रों का वर्णन है जो जीवन-पर्यन्त निम्न प्रवृत्तियों में लगे रहे पर केवल एक बार सच्चे हृदय से ब्रह्म का स्मरण करने के कारण मुक्ति के अधिकारी हो गए। ये सब चरित्र हममें उदात्त भावनाओं का सृजन करने में सर्वथा समर्थ हैं। 'भक्तमाल' का अध्ययन इस दृष्टि से और भी अधिक उपयोगी और आवश्यक है।

आज जब मानव मानवता के गुणों को तिलांजलि देकर निम्नगामी दुर्वृत्तियों में लगा हुआ है, जब मनुष्य प्रतिकार, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध की होली में दग्ध होकर दानव बन जाने में ही अपना कल्याण समझता है, जब अविश्वास और भेद-भावना की भित्तियाँ इतनी स्थूल होती जाती हैं कि मानव को मानव देख और समझ सकने में समर्थ नहीं रह गया है, ऐसे समय में भक्तमाल हमें उचित पथ पर अग्रसर कर सकेगा।

परिशिष्ट [क]

भक्तमाल के सम्बंध में कतिपय ज्ञातव्य तथ्य

१. भक्तमाल की रचना छन्दों में हुई है ।

२. भक्तमाल की रचना के लिए केवल छप्पय, कुंडलियाँ और दोहों को ग्रहण किया गया है ।

३. भक्तमाल में प्रमुख रूप से अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है ।

४. नाभादास ने सबसे पहले गोविन्ददास को भक्तमाल पढ़ाया था ।[1]

५. भक्तमाल की रचना अयोध्या, प्रयाग आदि पुण्य-स्थानों में हुई थी ।

६. भक्तमाल की रचना नाभादास ने अपने गुरु स्वामी अग्रदास की आज्ञा एवं प्रेरणा से की थी ।

७. भक्तमाल में सगुण एवं निर्गुण भक्तों के चरित्र का वर्णन समान रूप से श्रद्धापूर्ण शब्दों में किया गया है ।

८. भक्तमाल की परम्परा में लगभग २०० भक्तमालों की रचना की गई ।

---

१. सम्पादक श्री राधाकृष्ण दास : ध्रुवदास-कृत 'भक्तनामावली' पृ० ७२

परिशिष्ट [ख]

चौबीस निष्ठाओं में विभक्त २६९ भक्तों की नामावली

(१) अर्चा प्रतिमा निष्ठा १७ भक्त

१. अल्हजी (साल वृक्ष)
२. अल्हजी कील्हजी
३. कर्मानन्द जी
४. कील्ह जी अल्हजी
५. चन्द्रहास जी
६. जगन्नाथ थानेश्वरीजी
७. देवा पंडाजी
८. धनाजी
९. नामदेवजी
१०. पृथ्वीराज जी हरिमन्दिर
११. रामदासजी एकादशी डाकोर
१२. सदनजी सधना
१३. संतदास प्रबोधवंश
१४. स्वामी गोपाल जी
१५. सिलपिल्ले की भक्ता
१६. सिलपिल्ले की भक्ता सुता जमींदार की
१७. सीवाँ जी

(२) अहिंसा दया, ६ भक्त

१. केवलरामजी (बैल की साटी)
२. भुवन चौहानजी
३. मयूरध्वजजी ताम्रध्वज
४. रागाजी (कुम्हार)
५. शिवि राजा
६. हरिव्यासजी देवी से पूज्य

(३) आत्मनिवेदन, शरणागति, १२ भक्त

१. अक्रूरजी
२. गजजी
३. ग्राह
४. जटायूजी महाराज
५. जगन्नाथ
६. ध्रुवजी महाराज
७. विभीषणजी महाराज
८. विन्ध्यावलीजी
९. भानजा मांमू
१०. मांमू भानजा
११. लक्ष्मण भट्ट
१२. राघवानन्द स्वामी

(४) उपवास व्रत, २ भक्त

१. अम्बरीषजी महाराज
२. रुक्मांगदजी

(५) कर्मधर्म निष्ठा, ७ भक्त

१. दशरथजी चक्रवर्ती
२. दधीचिजी
३. बलिजी
४. भीष्मजी
५. सुधन्वाजी सुरथजी
६. सुरथजी सुधन्वाजी
७. हरिश्चन्द्रजी महाराज

(६) कीर्त्तन निष्ठा, १६ भक्त

१. कमलाकर भट्टजी
२. कृष्णदासजी चालक
३. गंगलजी वर्द्धमानजी
४. चतुर्भुज मुर्लीधर
५. जयदेवजी महाराज
६. तुलसीदास गोस्वामीजी भक्तमालसुमेर सचित्र
७. नन्ददास जी
८. नारायण मिश्रजी
९. परमानन्दजी सारंग
१०. वर्द्धमानजी गंगलजी
११. वालमीक महर्षिजी
१२. भट्टजी
१३. मथुरादास जी
१४. शुकदेवजी परमहंस
१५. सुखानन्दजी
१६. सूरदासजी

(७) गुरु निष्ठा, १२ भक्त

१. खोजीजी
२. गजपति रुद्रप्रतापजी
३. गुरुनिष्ठ शिष्य
४. घाटमजी
५. चतुर स्वामी (स्त्री भेंट)
६. जीवाजी तत्वाजी
७. तत्वाजी जीवाजी
८. नरवाहनजी
९. पादपद्मजी
१०. पृथ्वीराज कछवाहा
११. राघोदासजी दूवले रुद्रप्रताप जी गजपति
१२. विष्णुपुरीजी

(८) दास्यनिष्ठा, १६ भक्त

१. अंगदजी
२. कल्यानसिंहजी
३. केशव लटेराजी
४. खेम गुलाई
५. खेमाल राजा
६. गोपालभट्टजी गुसाईं

७. दिवाकर भोलारामजी
८. पीपाजी
९. प्रह्लाद भक्तराजजी
१०. प्रयागदासजी
११. भगवान भक्तजी
१२. रामरायसारस्वतविप्र
१३. रैदासजी महाराज
१४. रंगजी
१५. सोतीजी
१६. हठीनारायणजी १६७८ संवतु

(९) धर्म प्रचारक २१ भक्त

१. अगस्त्यजी
२. कृष्णदासजी पयहारी
३. कृष्णचैतन्य नित्यानन्द
४. गोविन्ददासजी भक्तमाली
५. चतुर्भुजजी
६. नारायणभट्ट जी
७. नित्यानन्दकृष्ण चैतन्य
८. निम्बार्क स्वामीजी
९. पयहारी कृष्णदासजी
१०. बल्लभाचार्यजी
११. विष्णुस्वामी
१२. ब्रह्माजी जगत्पिता
१३. माधवाचार्य्यजी
१४. श्रीरामानन्दस्वामी
१५. रामानुजस्वामी
१६. रूपजीसनातनजी
१७. शिवजीआशुतोष
१८. शंकराचार्य्यजी
१९. सनातनजी रूपजी
२०. सोभूरामजी
२१. हरिव्यासदेव
२२. हितहरिवंशजी

(१०) धामनिष्ठा ८ भक्त

१. काकभुशुंडिजी
२. काश्येश्वरजी
३. प्रवोधानन्द सरस्वती
४. भगवन्तदीवानमाधवसुत
०. भुशुंडीजी काक
५. भूगर्भ गुसाईं
६. मधुगुसाईं
७. लालमतिदेवीजी
८. हरिदासजी तोलनेवाले (वनिक)

(११) नाम ७ भक्त

१. अजामेलजी
२. अन्तरनिष्ठ राजा
३. अन्तरनिष्ठ की रानी
४. कबीरजी साहिव
५. पद्मनाभजी
६. ब्राह्मण एक
७. ब्राह्मणी

(१२) प्रेम १७ भक्त

१. अम्बरीषजी और उनकी रानी
२. कात्यायनी देवीजी

३. कृष्णदासजी नूपुरप्राप्त
४. कृष्णदासजी ब्रह्मचारी
५. गदाधर भट्ट
६. जसोधरस्वामीजी दिवदास वंशी
७. नारायणदासजी नृतक
८. विट्ठलदासजी चौबे
९. विदुरजी
१०. विदुरानी देवीजी
११. भक्तदास कुलशेखर
१२. माधोदासजी (गढ़ागढ़)
१३. मुरारिदासजी (विलोंदा)
१४. रतिवन्तीजी देवी
१५. लीलानुकर्ण (नीलाचल)
१६. सवरीजी महारानी
१७. सुतीक्षणजी प्रेमसिन्धु

(१३) भेष ८ भक्त

१. गिरिधरग्वाल (तीर्थ)
२. चतुर्भुजराजा (करौली)
३. भगवानदासजी (मथुरा)
४. मधुकरसाहजी (ओड़छा)
५. रसखानजी मालाधारी
६. राजा (भांड़संतसनमान)
७. लालाचार्य्यजी (जामातवर्वरमुनि)
८. हंस पक्षी

(१४) महाप्रसाद ४ भक्त

१. अंगदसिंहजी (कलियुग)
२. पुरुषोत्तमपुरी के राजा
३. श्वेतद्वीप भक्त (खग) जी सप्तद्वीप के भक्त
४. सुरसुरानन्द स्वामी श्रीसुरसुरी जी

(१५) माधुर्य्य शृंगार २० भक्त

१. अग्रदेव स्वामीजी
२. कर्मैतीदेवीजी
३. कन्हरदासजी (वोड़िये)
४. कल्यानजी धर्मदाससुत
५. कील्हजी स्वामी
६. कृष्णदासजी पंडित
७. केशवभट्ट काश्मीरी
८. गुहनिषादजी प्रेमी
९. गोपाल भट्टजी
१०. गोपिका वृन्द श्रीव्रजकी
११. जसवन्तजी
१२. नरसीमेहताजी
१३. वनवारी रसिक रंगीले
१४. विल्वमंगलजी
१५. मानदासजी
१६. मीरांबाईजी देवी
१७. रत्नावली देवीजी
१८. लोकनाथजी गोसाईं
१९. सूरदास मदनमोहन
२०. हरिदासजी रसिक

(१६) लीला मूर्ति में निष्ठा ६ भक्त

१. अली भगवानजी
२. खड्गसेनजी कायस्थ

३. नाथ भट्टजी फनिवंशी
४. वल्लभजी (नारायण भट्ट के)
५. विपुल बिट्ठलजी
६. रामरैनजी (खैमाली)

(१७) वात्सल्य १० भक्त

१. कर्मा बाई जी
२. कृष्णदासजी बिट्ठलेशसुत
३. कौशल्या बड़ी अम्बाजी (सतरूपाजी)
४. गुंजा (माली) जी
५. गिरिधर बिट्ठलेशसुत
६. गोकुलनाथजी गोसाईं
७. जसोदामाताजी
८. नन्दजी महाशय
९. बिट्ठलनाथ गुसाईं
१०. त्रिपुरदास कायस्थ

(१८) वैराग्य सान्ती १४ भक्त

१. कामध्वजजी
२. गदाधरजी विहारीलालजी
३. जीव गुसाईजी
४. द्वारिकादास योगीश
५. नारायणजी अल्हवंशी
६. परशुराम जी
७. बाँकाजी राँकाजी
८. माधोदासजी जगन्नाथीय
९. रघुनाथ गुसाईं गरुड़
१०. रन्तिदेवजी
११. रांकाजी वांकाजी
१२. श्रीधर 'स्वामीजी
१३. सुरसुरीजी महरानी
१४. हरिवंश निष्किचनजी

(१६) श्रवणनिष्ठा ४ भक्त

१. गरुड़जी खगेश
२. नारदजी देवर्षि
३. परीक्षितजी राजा
४. लालदासजी

(२०) सख्यनिष्ठा ५ भक्त

१. अर्जुनजी पांडव
२. गोविंद श्री बिट्ठलशिष्य
३. गंगग्वालजी
४. गोपसहचर ग्वालवृन्द श्रीव्रजके
५. सुदामाजी

(२१) सतसंग साधुसेवा २० भक्त

१. कान्हर श्री बिट्ठलसुत
२. केवलकूवा
३. गनेशदेई रानी
४. गोपालीजी देवी
५. गोपाल वांवीली
६. ग्वालजी भैंसवाले भक्त
७. जस्सू स्वामी
८. तिलोकजी सोनार
९. तिलोचनदेव
१०. नन्दब्राह्मण वैष्णसेवी

११. नीमाजी
१२. विष्णुदासा काशीर
१३. दो बाई सुत विष देनी
१४. बारमुखी
१५. (जयतारन) बिदुर षेतीवाले
१६. मनसुखदास स्रीनाथ
१७. माधव ग्वाल
१८. रामदास
१९. रसिक मुरारिजी
२०. रानीजी सुत विष देनी
२१. राजा उस रानी का
२२. राजा उस बाई का
२३. राजान बाई रामरैन
२४. लाखाजी
२५. सदाव्रती साहूकार महाजन
२६. संतभक्त चूल्हे वाले
२७. सेनजी
२८. हठीले हरिराम
२९. हरिपाल ब्राह्मण निष्किंचन

(२२) सेवानिष्ठा १० भक्त

१. आसकरन
२. कुमार किशोरसिंह
३. जगतसिंह नृपमणि
४. जयमलजी
५. नरहरियानन्द
६. प्रेमनिधिजी,
७. विष्वक्सेनजी
८. लक्ष्मीदेवीजी
९. शेषजी जगदाधार
१०. हनुमानजी श्रीरामदूत

(२३) सौहार्दनिष्ठा ५ भक्त

१. कुन्ती देवीजी
२. जनकजी राजर्षि मिथिलेश सीरध्वज
३. युधिष्ठिरजी पांडव
४. द्रौपदीजी महारानी
५. वृषभानुजी पुण्यपुंज

(२४) ज्ञानी १३ भक्त

१. अलर्कजी
२. ऊधवजी
३. कान्हर समदृष्टि
४. नारायण बदरिकाश्रम
५. पूरनजोगी विराटी
६. वशिष्ठजी गुरुवर्य्य
७. बहुलाश्वराजा (मिथिला)
८. वाल्मीक (द्वापर युग)
९. विश्वामित्रजी
१०. जड़भरतराजा (भरतखंड)
११. लड्डूस्वामी
१२. श्रुतिदेवविप्र (मिथिला)
१३. ज्ञानदेवजी

परिशिष्ट [ग]

प्रियादासजी का परिचय

प्रियादास 'भक्तमाल' के सर्वप्रथम टीकाकार थे। परन्तु खेद है कि हिन्दी के इतिहासकारों और साम्प्रदायिक लेखकों की दृष्टि उनकी ओर नहीं गई है। प्रियादास की जीवनी, नाभादास की जीवनी के सदृश ही हमारी उत्सुकता और रहस्य की सामग्री बन गई है। प्रियादास जी के सम्बंध में हमें दो सूत्रों से किंचित् सूचना प्राप्त हो जाती है। इनमें से प्रथम सूत्र है अंतःसाक्ष्य तथा द्वितीय है वहिर्साक्ष्य। वहिर्साक्ष्य में उल्लेखनीय है महाराज रघुराज सिंह कृत 'भक्तमाला'। अब हम इन दोनों सूत्रों का परीक्षण करते हुए प्रियादास का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

'भक्तमाल' की टीका समाप्त करने के अनन्तर प्रियादास ने अपनी विनयशीलता और नम्रता का वर्णन करते हुए कहा है :

"रसिकाई कबिताई जीन्ही दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाव हैं।
उर रंगभवन में राधिका खन वसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिविम्ब भाय हैं॥
रसिक समाज में विराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलें सुख समुदाय हैं।
जनमन हरि लाल मनोहर नांव पायो उनहूं को मन हरि लीनों ताते राय हैं॥
इनहीं के दास दास दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है।
गोवर्द्धननाथ जू कैं हाथ मन परचो जाको वास वृन्दावन लीला मिलि गाई है।
मति उनमान कह्यौ लह्यौ मुख संतनि के अंत कौन पावै जोई गावै हिय आई है॥
घट बढ़ जानि अपराध मेरो क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मनि में सुनाई है।"[1]

तथा

"नाभाजू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।
भक्ति विस्वास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रग हियो लीजै संतनि लड़ाइकै॥

१. भक्तमाल, पृ० ९३९-४०

संवत प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर फालगुन को मास वदी सप्तमी विताइकै ।
नारायणदास सुखरास भक्तमाल लै कै प्रियदास दास उर वसौ रहौ छाइकै ॥"[१]

उद्धृत उद्धरणों में से प्रथम की छठी और सातवीं पंक्तियाँ तथा द्वितीय की तीसरी पंक्ति विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। कवि ने इन पंक्तियों में कहा है कि "इन्हीं मनोहर राय के दासों के दास (मैं प्रियादास) ने इसकी टीका विक्रमी संवत् १७६९ के फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को पूर्ण की।" स्पष्ट है कि इन पंक्तियों और उल्लेखों से प्रियादास की नम्रता और विनयशीलता के अतिरिक्त जीवनी या व्यक्तित्व के सम्बंध में कोई सूचना नहीं मिलती है।

महाराज रघुराज सिंह ने 'भक्तमाला' में प्रियादास का चरित्र ५० पंक्तियों में वर्णन किया है। परन्तु यह चरित्र प्रमुख रूप से चमत्कार-बोधक है। इस चरित्र की कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं :

"अब वरणौ प्रियदास चरित्रा। भक्तमाल किय तिलक विचित्रा ॥
प्रियादास यक संत प्रवाना। शिष्य मनोहरदास सुजाना ॥"[२]

इतना उल्लेख करने के अनन्तर लेखक ने 'भक्तमाल' और उसके टीकाकार प्रियादास के अद्भुत और चमत्कारी प्रभाव का वर्णन सविस्तार किया है।[३]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[४], आचार्य मिश्रबंधु[५], हरिऔध जी[६] श्रीपरशुराम चतुर्वेदी तथा डा० रामकुमार वर्मा[७] आदि विद्वानों ने प्रियादास का उल्लेख टीकाकार के रूप में किया है, किन्तु इन्होंने कोई विशेष सूचना नहीं दी है।[८]

---

१. भक्तमाल, पृ० ९४१
२. भक्तमाला, पृ० ६३४
३. भक्तमाला, पृ० ६३४-३५
४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७
५. विनोद, पृ० ३५८
६. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३३५
७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६८०
८. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृ० ९६ आदि

परिशिष्ट [घ]

सहायक पुस्तकें

(क) इतिहास

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल
२. हिन्दी भाषा और साहित्य, डा० श्यामसुन्दर दास
३. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
४. मिश्रबन्धु-विनोद, मिश्रबन्धु
५. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, हरिऔध
६. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा
७. हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन, डा० रामकुमार वर्मा
८. सरोज, शिवसिंह सेंगर
९. पालि साहित्य का इतिहास, भरत सिंह
१०. उर्दू साहित्य का इतिहास, डा० सरला शुक्ल
११. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, गुलाबराय
१२. हिन्दी रीति-साहित्य, डा० भगीरथ मिश्र
१३. हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र
१४. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी

(ख) साहित्य समालोचना

१. साहित्यालोचन, डा० श्यामसुन्दर दास
२. सिद्धान्त और अध्ययन, श्री गुलाब राय
३. साहित्य समालोचना, डा० रामकुमार वर्मा
४. साहित्य समीक्षा, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

(ग) भाषा-विज्ञान

१. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२. सामान्य भाषा-विज्ञान, डा० बाबूराम सक्सेना

३. तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, डा० मंगलदेव शास्त्री
४. अवधी भाषा और उसका साहित्य, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

(घ) थीसिस

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त
२. निर्गुण काव्य-धारा, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
३. आधुनिक काव्य-धारा, डा० केसरी नारायण शुक्ल
४. जायसी के परिवर्ती सूफी कवि, डा० सरला शुक्ल
५. आचार्य केशवदास, डा० हीरालाल दीक्षित
६. आचार्य भिखारीदास, डा० नारायण दास खन्ना
७. सुन्दर-दर्शन, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित

(ङ) देश के इतिहास

१. भारतवर्ष का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद
२. राजस्थान का इतिहास, कर्नल टॉड
३. आइन-ए-अकबरी
४. तुजुक-ए-जहाँगीरी

(च) प्रमुख आलोचना ग्रन्थ

१. योग-प्रवाह, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
२. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
३. संत-दर्शन, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
४. प्रेमचन्द, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित
५ काव्य की परख, डा० एस० पी० खत्री
६. कबीर का रहस्यवाद, डा० वर्मा
७. तसव्वुफ और सूफी मत, पं० चन्द्रबली पाडेय
८. लोक-जीवन और साहित्य, डा० रामविलास शर्मा
९ कबीर साहित्य की परख, श्रीपरशुराम चतुर्वेदी

(छ) काव्यशास्त्र

१. वाङ्मय विमर्श, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२. साहित्यादर्श, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३. रस छंदालंकार, डा० रसाल

(ज) विविध

१. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास
२. कवितावली, गो० तुलसीदास
३. भक्ति-रस-बोधिनी टीका, प्रियादास
४. भक्तनामावली, सम्पादक राधाकृष्ण दास
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली, सम्पादक ब्रजरत्न दास
६. भक्ति-सुधा-स्वाद तिलक, रूपकला
७. भक्त कल्पद्रुम, सम्पादक कालीचरण चौरसिया
८. भक्तमाला, महाराज रघुराज सिंह
९. कबीर ग्रन्थावली, डा० श्यामसुन्दर दास
१०. वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, सम्पादक कृष्णशंकर शुक्ल
११. भक्त कल्पद्रुम, प्रताप सिंह

(झ) विशेषांक

१. कल्याण योगांक
२. कल्याण संतांक
३. कल्याण संतवाणी अंक
४. कल्याण भक्त चरितांक
५. प्रेम सन्देश सदाचारांक

(ञ) पत्र-पत्रिकाएँ

१. सम्मेलन-पत्रिका
२. कल्याण
३. हिन्दी अनुशीलन
४. आलोचना

अँग्रेजी

१. Religious Sects of Hindus—H. H. Wilson
२. Medieval Mysticism—K. M. Sen
३. Akbar, the Great Moughal—V. Smith
४. Jahangir's India—Moreland
५. The Religious Policy of Moughal Emperors—Shri Ram Sharma
६. History of Shahjahan—Dr. Banarsi Prasad.
७. A short History of Muslim Rule in India–Ishwari Prasad.
८. A Study of History—Arnold J. Toynbee. Part I.
९. An Introduction to the Study of Literature—Hudson (Ed. 1945)
१०. Principles of Literary Criticism—I. A. Richard.
११. The Development of English Biography—Sir Sidney Lee.
१२. A History of Indian Philosophy—Dr. S. N. Das Gupta (Vo. I, 1951)
१३. An Apology for Poetry—Sir Sidney Philliph.
१४. Idea of Universal Poetry—R. Hard.
१५. Encyclopedia Britanica—Vol. III (Ed. II).
१६. Experiments in Auto-biography—Vol. II (Ed. 1934)
१७. Midsummer Nights Dream—Shakespeare.

नामानुक्रमणी

म

य

र

ल

व

श

स